भारतीय इतिहास का पांचवां स्वर्णिम पृष्ठ

वीर सावरकर

प्रथम अध्याय

पराक्रम की चरमसीमा। अटक में भगवाध्वज जरी पटका फहरा।।

विषय प्रवेश

भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ नामक प्रस्तुत ग्रन्थ का विषय क्षेत्र पूर्व प्रकाशित प्रथम भाग में व्यक्त किया जा चुका हैं। जिसमें इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया गया हैं कि इस ग्रन्थ का मूल हेतु ईस्वी सन् की आठवीं से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक सतत् होने वाले प्रदीर्घ और प्रचण्ड हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का इतिहास प्रस्तुत करना नहीं अपितु उस महायुद्ध और तत्कालीन परिस्थिति की राष्ट्रीय (हिन्दू) दृष्टिकोण से जितनी मर्मज्ञ यथार्थ और निर्भीक समीक्षा होनी आवश्यक हैं और जिसे आज तक किसी ने नहीं किया उसे प्रस्तुत करना हैं हिन्दू राष्ट्र के हित में वह आज भी अतीव आवश्यक हैं।

दो काल खण्ड : प्राचीन और अर्वाचीन

हमारे मत में घटनाक्रम के अनुसार अपने इतिहास के जो दो काल खण्ड हो सकते हैं वे साधारणतः ईस्वी सन् के सात सौवें वर्ष तक का प्राचीन भाग और सात सौवें वर्ष से आज तक की घटनाओं का आधुनिक भाग हैं। इस प्राचीन काल खण्ड अर्थात् ईस्वी सन् 700 तक के समय की समीक्षा तथा उसके चार स्वर्णिम पृष्ठों का दिग्दर्शन कराने वाले इस ग्रन्थ का भाग इससे पूर्व प्रकाशित हो चुका हैं। अब उसके पश्चात् अर्थात् आधुनिक कालखण्ड के अपने हिन्दू राष्ट्र के इतिहास की समीक्षा करने वाला यह दूसरा भाग प्रस्तुत हैं।

ऐतिहासिक काल खण्ड की समीक्षा करते समय उसकी आधारभूत फुटकर घटनाओं का विस्तृत वर्णन जहां आवश्यक होगा किया जाएगा और साथ ही यत्र तत्र कालक्रम के नियमों का भी अनुसरण किया जाएगा। परन्तु चूंकि अन्य अनेक व्यक्तियों द्वारा लिखित छोटे बड़े ऐतिहासिक ग्रन्थों से कालक्रम आदि बातें सुगमतापूर्वक उपलब्ध हो सकती हैं अतः इस ग्रन्थ में उनके लिए अनावश्यक स्थान खर्च करना उचित नहीं इसलिए समीक्षात्मक ग्रन्थ में शक सन् संवतादि काल से संबधित क्रम की अपेक्षा कालानुबंध को न छोड़ते हुए जिन जिन विधेयों की चर्चा की जाएगी उन उन विधेयों के विषय से सम्बन्धित क्रम की ओर ही विशेष ध्यान दिया जाएगा।

अभूतपूर्व द्विमुखी संघर्ष

इस आधुनिक इतिहास के प्रारम्भ में ही भारत पर मुसलमानों द्वारा किये गये लगातार आक्रमणों में जो सहस्त्रों युद्ध हुए उनमें द्विमुखी संघर्ष होना राष्ट्र के इतिहास की अभूतपूर्व दुर्घटना थी। मुसलमानों से पूर्व ऐतिहासिक काल में हिन्दुस्थान पर शक यवन आदि के जो परराष्ट्रीय आक्रमण हुए उन सभी का मुख्य उद्देश्य था हिन्दुस्थान पर अपनी राजसत्ता मात्र स्थापित करना। इस राजनीतिक उद्देश्य के अतिरिक्त उनके आक्रमणों का कारण कोई धार्मिक अथवा सांस्कृतिक शत्रुता नहीं थी। परन्तु इस नए इस्लामी शत्रु के आक्रमण के पीछे हिंदूराष्ट्र की राजसत्ता को उद्ध्वत कर सम्पूर्ण हिन्दुस्थान पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित करने के साथ साथ जो इसके पूर्व के शत्रुओं को स्पप्न में भी नहीं सूझी थी ऐसी एक भयावह धार्मिक महत्वाकांक्षा भी धधक रही थी। राजकीय महत्वाकांक्षा की अपेक्षा कई गुना अधिक प्रचण्ड उनकी धार्मिक महत्वाकांक्षा का उत्साह हिनदूराष्ट्र का जीवनप्राण कहलाने वाले हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व को नष्ट करने तथा मुस्लिम धर्म को तलवार के जोर से हिन्दुओं पर लादने के लिए उनके आक्रमण को सतत् उत्तेजना देता रहा और इस हेतु समस्त एशिया महाद्वीप के लाखों मुसलमान आक्रामक विभिन्न राष्ट्रो से निकालकर हिंदुस्थान पर सदियों तक निरन्तर आक्रमण करते रहे।

ईसाइयों के भी अत्याचारपूर्ण हमले

जब मुस्लिम आक्रमणों से देश संकटग्रस्त था उसी समय दुबले पर दो अषाढ़ की भांति (ईसवी सन् की पहली शताब्दी में मालावार मे घुसें सीरियन ईसाइयों की बात जाने दें तो भी) साधारणतः पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग यूरोप से पुर्तगाली डच फ्रांसीसी और

अंग्रेज आदि ईसाई राष्ट्र भी पश्चिम के समुद्रीय मार्ग से हिन्दुस्थान पर टूट पड़े। यह ईसाई आक्रमण भी मुस्लिम आक्रमणों की भांति राजकीय एवं धार्मिक दोनों प्रकार का ही था। इसका भी स्परुप उतना ही राक्षसी था जितना मुस्लिम आक्रमण का। उन्होंने संगीनों की नोक पर हिन्दुओं को भ्रष्ट करके किस प्रकार बलपूर्वक ईसाइयत लादने के लिए लोमहर्षक अत्याचार किये इसका वर्णन यथास्थान आगे किया जायेगा।

प्रथमतः हिन्दू मुस्लिम संघर्ष की ही समीक्षा

मुस्लिम आक्रमणों के उपर्युक्त दोनों मोर्चे यद्यपि एक ही महायुद्ध के अंगोपांग थे तथापि उनके राजनीतिक एवं धार्मिक स्वरुप उनके युद्ध के साधन और अन्तिम परिणाम बहुत अंशो में मूलतः भिन्न भिन्न ही थे। अतः उनकी सूक्ष्मता एवं स्वतंत्र रीति से खोजबीन करना अतीव आवश्यक हैं। इसलिए इस दूसरे भाग में हम उस महायुद्ध के मुस्लिम और मुस्लिमेतर म्लेच्छों के धार्मिक आक्रमण की समीक्षा करेंगे और फिर तीसरे भाग में मुसलमानों के राजकीय आक्रमण के मोर्चे की समीक्षा करेंगे।

दूसरा अध्याय

केवल हिन्दू निन्दक इतिहास

विदेशी इतिहासकरों अथवा प्रत्यक्ष हमारे शत्रुओं द्वारा लिखित इतिहासों का ही नहीं अपितु अपने लोगों द्वारा लिखित इतिहास ग्रंथो की ही बात लें तो वे भी हिन्दुत्व के शुद्ध और निर्भय दृष्टिकोण से कभी नहीं लिखे गये इसलिए हिन्दुओं की गौरवगाथाओं को किस प्रकार बारम्बार लुप्त किया गया और किस प्रकार केवल हिन्दुओं पर आई आपत्तियों की घटनाओं की ही चर्चा कर उसे हिन्दू इतिहास के रुप में प्रदर्शित किया गया हैं। इस विषय को अनेक उदाहरणों द्वारा हमने इस पुस्तक के प्रथम भाग में स्पष्ट किया हैं और आगे भी करेंगे। इस समय हम जिस काल खण्ड के विषय में लिख रहे हैं उसकी घटनाओं के उदाहरण उसी सत्य को विशद करने वाले हैं। अतः हम आगे उसकी ओर विशेष निर्देश करेंगे।

सामान्यतः ऐतिहासिक ग्रंथो और पिछले डेढ़ दो सौ वर्षो से पाठशालाओं में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की पुस्तकों में हूणों के बाद ही हिन्दुओं की स्थिति के सम्बन्ध में एक दो पंक्तियाँ भी न लिखते हुए एकदम सीधे हिन्दुओं पर मुसलमानों की सिन्ध में हुई पहली चढाई का ही वृतान्त दिया जाता रहा और तत्पश्चात् एक के बाद दूसरे इस्लामी आक्रमणों के अध्याय जुड़ते रहे। इससे सामान्य हिन्दू पाठकों और विशेषकर विद्यार्थियों पर यह संस्कार पड़ा कि हिन्दुओं का इतिहास परायों के आक्रमण, हिन्दुओं की पराजय और उनकी अखण्ड दासता की ही कहानी हैं इस झूठे वृतान्त को स्वीकृत सत्य के रुप में मानकर हमारे हित शत्रुओं के द्वारा पिछले लगभग दो तीन सौ वर्षो से समस्त संसार में बड़े जोर शोर से प्रचार किया जा रहा हैं। हिन्दुत्व के विद्वेष के कारण जिनका मस्तिष्क विकृत हो गया था उन डाक्टर अम्बेड़कर का ही उदाहरण लें। वे लिखते हैं-

'The Hindu's has been a life of a continuous defeat. It is mode of survival of which every hindu will feel sad.'

अर्थात्..... हिन्दुओं का जीवन निरन्तर पराजय का जीवन रहा हैं। यह इस प्रकार का जीवन जीना हैं जिसके विषय में प्रत्येक हिन्दू लज्जा अनुभव करेगा।

हूणों के पश्चात् हिन्दुओं द्वारा दिग्विजय

यहां यदि केवल इस प्रसंग में ही कहना हो तो ऐतिहासिक सत्य वह यह हैं कि हूणों का पतन करने के पश्चात् अर्थात् साधारणतः सन् 550 के बाद हिन्दू राजाओं ने सिन्धु नदी को विभिन्न मार्गो से लांघकर आज जिन्हें सिन्ध, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, हिरात, हिन्दूकुश, गिलगित, कश्मीर इत्यादि कहा जाता हैं और जो प्रदेश सम्राट अशोक के पश्चात् वैदिक हिन्दुओं के हाथ से यवन शक हूण आदि म्लेच्छों ने छीनकर लगभग 500 वर्ष तक अपने अधिकार में ले रखे थे सिन्धु नदी के समस्त भारतीय साम्राज्य के प्रदेश उन सभी म्लेच्छ शत्रुओं को ध्वस्त करते हुए वैदिक हिन्दुओं ने उस समय फिर से जीत लिए। इतना ही नहीं तो चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के उस पार जाकर हिन्दूकुश तक हिन्दुओं की विजय वाहिनियों ने वैदिक धर्म और राज्य का ध्वज फहरा दिया था। एक समय ऐसा भी था जब

कश्मीर के उस पार मध्य एशिया के खोतान में भी हिन्दू राज्य प्रस्थापित थे। उस समय की एक अत्यन्त रोचक बात का स्मरण दिला देना ही इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त होगा कि अनेक इतिहासकारों के मतानुसार गजनी में भी राजा शिलादित्य राज्य करते थे।

हिन्दू राष्ट्र की पुनरुत्थान क्षमता

हिन्दुओं की राष्ट्रीय पुनरुत्थान क्षमता की इस आश्चर्यजनक दीर्घोद्योगिता के कारण ही स्मिथ सरीखे परकीय इतिहासकार भी क्षणमात्र के लिए अश्चर्यचकित हो दांतो तले उंगली दबा लेते हैं। इस ग्रन्थ के प्रथम भाग के अन्त में इस तथ्य की जानकारी देने वाले और तत्कालीन हिन्दुओं के विजयशाली स्वातंत्रय का वर्णन करने वाले इतिहासकार स्मिथ के मूल उद्‌गार दिये हैं।

26 नं. पन्ने से शुरु

सोमनाथ पर महमूद का आक्रमण

इसके पश्चात् सुलतान महमूद ने सन् 1025 में सौराष्ट्र (गुजरात) के सोमनाथ मंदिर पर इतिहास प्रसिद्ध आक्रमण किया। इस बार की उसकी सेना की विशालता देखकर एवं महमूद की पैशाचिक घोषणाओं को सुनकर उनकी सेना के सौराष्ट्र का शासक राजा भाग गया। इससे उस विशालतम सुसंगठित एवं सुसज्ज मुसलमान सेना का सामना करने के लिए हिन्दुओं की किसी सशस्त्र एवं व्यूहबद्ध सेना का अस्तित्व ही शेष न बचा। फिर भी यथाशक्ति संरक्षण करने के लिए म्लेच्छ शत्रु का प्रतिकार करने हेतु जो मिल सके सो हथियार लेकर एकत्रित होने का आह्‌वान किया। इस आह्‌वान पर दूर-दूर के सहस्त्रों हिन्दू आकर डट गये। यह युद्ध किसी राजा के लिए नहीं था। इसमें लड़ने वाले किसी भी हिन्दू को व्यक्तिगत राज्य लाभ नहीं होने वाला था। यह विशुद्ध धर्मयुद्ध था। इतने पर भी वे सहस्त्रों हिन्दू कोई व्यूह बद्ध प्रशिक्षित सैनिक नहीं थे। वह तो ऐन समय पर एक सिर माथे लगाकर और अपने प्राण हथेली पर लेकर वे महमूद की सशस्त्र अनुभवी संगठित और व्यूहबद्ध सेना से दिन रात जूझते रहे। मुस्लिम सेना के आक्रमण का सामना करते हुए परकोटे की रक्षा तक फिर मन्दिर के परकोटे के ऊपर से और शत्रु के मन्दिर में घुस आने पर मंदिर के भीतर भी हिन्दू धर्म का सशस्त्र प्रतिकार जारी रहा। वे मुसलमानों के रक्त का छिड़काव बराबर करते रहे। अन्त में जब मन्दिर पूर्ण रुप से जीत लिया गया तब महमूद ने जोश में आकर मन्दिर के गर्भ गृह में प्रविष्ट होकर स्वयं अपने हाथों से सोमनाथ की प्रतिमा को भंग किया। अपने इस धर्मान्ध कुकृत्य को चिरस्थायी एवं प्रसिद्ध बनाने के लिए महमूद ने बुतशिकन मूर्तिभंजक की उपाधि ग्रहण की।

पचास हजार हिन्दू वीरों का बलिदान

मुस्लिम इतिहासकारों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया हैं कि अपने मन्दिर की रक्षा करते करते संग्राम में कम से कम पचास हजार हिन्दू मारे गये। यदि उन पचास हजार में कोई हिन्दू यह कहता कि मै मुसलमान बनने को तैयार हूँ तो मुसलमान निःसन्देह रुप से उसे प्राणदान दे देते क्योंकि उनकी यही धार्मिक रणनीति थी। परन्तु इस प्रकार भ्रष्ट जीवन जीने को धिक्कारते हुए एक हजार नहीं पचास हजार हिन्दू स्वयंसेवकों ने धारा तीर्थ में अपना प्राणोत्सर्ग किया।

यूनान के प्राचीन इतिहास में ऐसे ही एक प्रसंग पर परकीय शत्रुओं से लड़ने वाले धर्मवीर होरेशियस का गौरव गान करते हुए एक अंग्रेज कवि ने लिखा हैं-

Thus out spake brave Horatius,
The captian of the gate,
To every man upon this earth,
Death come soon of late,
And how can a man die better than,
By facing fearful odds,

For the ashes of his fathers.
And the temples of his Gods.

द्वार का कप्तान वीर होरेशियस यूं बोला – इस पृथ्वी पर निवास करने वाले प्रत्येक प्राणी का मरण निश्चित हैं चाहे जल्दी हों या देर में और जब मरण निश्चित ही हैं तो अपने पूर्वजो के यश तथा अपने भगवान के मन्दिरों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भीषण एवं भयंकर कठिनाइयों का मुकाबला करते हुए उनसे जूझतें हुए मृत्यु को प्राप्त होने से बढ़कर किसी प्रकार कर मरण नहीं हो सकता।

क्या ऐसा कोई पत्थर दिल हिन्दू होगा जो उपयुक्त काव्य में निहित गौरवयुक्त भावना से अपने मन्दिर और स्वधर्म की रक्षा के लिए मर मिटने वाले पचास हजार हिन्दू धर्मवीरों की स्मृति में कृतज्ञापूर्वक श्रद्धांजलि समर्पित न करे?

परन्तु अत्यन्त खेद के साथ लिखना पड़ता हैं कि सोमनाथ पर महमूद के आक्रमण के विषय में लिखते समय न केवल विदेशी अपितु अनेक कृतघ्न हिन्दू इतिहासकारों ने भी उन पुजारियों और हिन्दू समुदाय की अपने देवता के प्रति भोली भक्ति का उपहास मात्र किया हैं। अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं स्वधर्म रक्षणार्थ उन सहस्त्रों हिन्दू धर्मवीरों ने जो भव्य बलिदान दिया उसका कहीं रत्ती भर गौरव गान नहीं किया गया। लेकिन यदि मूर्खो से रत्नों की परख न हो तो इसमें रत्नों का क्या दोष हैं।

उन हिन्दुओं की भोली भक्ति को उचित दोष देना यदि न टाला जा सकता हो और जिन्हें यदि उसके लिए उनका उपहास करने की इच्छा होती हो तो उन्हें यह भी बहुत स्पष्ट करना चाहिए कि अपने देवता की जाज्वल्यता और शक्ति के विषय में हिन्दुओं की जो श्रद्धा थी अधिक बहुत भोलेपन की थी इतना ही कहा जा सकता हैं। परन्तु दूसरे के धर्म पर अत्याचारपूर्वक सशस्त्र आक्रमण कर निर्दोष स्त्री पुरुष बच्चे बूढ़ों को मेरे भगवान अल्ला को भजेगा? मुसलमान बनेगा? या जान से मार दूँ? की धमकी देकर मुसलमान बनने से इन्कार करने वालों का कत्लेआम करके पागलों के समान राक्षसी उन्माद रक्तपितासु धर्मान्ध और अपने ही देवता को दानव बनाने वाली तो कदापि नहीं थी लेकिन उपर्युक्त सत्य को निर्भयता से कहने का साहस केवल हिन्दुओं की ही भक्ति का उपहास करने वाले इन छिछले और डरपोक लेखकों में नहीं था।

फिर महमूद के समान मुसलमान सेनापतियों द्वारा जब जब सोमनाथ आदि हिन्दुओं की मूर्तियों और मन्दिरों का विध्वंस किया गया तब तब मुस्लिम तवारीखकारों और मुल्ला – मौलवियों ने डींग हांकते हुए कहा 'लो देखों! हमने तुम्हारी मूर्तियां तोड़ डाली पर तुम्हारा देवता हमारा कुछ भी न बिगाड़ पाया। इसलिए तुम्हारा देवता झूठा हैं और हम मूर्तिभंजको का देव अल्लाह ही केवल सच्चा हैं।' परन्तु यदि हम इन डींगो को ही सच्ची कसौटी माने तो मुस्लिम धर्म को न मानने वाले और अल्लाह को धिक्कारने वाले चंगेज खां और उसके उत्तराधिकारी ने जब खलीफा की राजधानी में घुसकर उसका नाश कर खलीफा को खत्म कर दिया और जिसे मुसलमान अल्लाह का घर कहते हैं ऐसी कई मस्जिदें जला डाली कई को घुड़साल बना डाला तथा कुरान की पुस्तकों को घोड़ों के पैरो तले रुंधवाया तब सैकड़ों प्रसंगो का अवलोकन करके ये झूठी डींग हांकने वाले मुल्ला मौलवी इस बात को मानने को तैयार होंगे कि उनका अल्लाह भी झूठा और कमजोर हैं? इस सम्बन्ध में बहुत अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं हैं। सोमनाथ के समान अनेक देवताओं की मूर्ति तोड़कर यदि वे विजयी हुए और इसीलिए मूर्तिभंजक बुतशिकन अफजल खां नामक एक सेनापति का सिर काटकर उस बत्तीस दांत वाले बकरे का मुंड तुलजापुर की देवी की मूर्ति को नैवेद्य के रुप में चढ़ाया तब उनका भी हाथ अल्लाह नहीं पकड़ सका तो फिर इस प्रकार अनेक प्रसंगो के आधार पर मूर्तिपूजक धर्म ही क्यों न सच्चा कहा जाय?

सोमनाथ के मंदिर को ध्वस्त करने के पश्चात् अपनी लूट की अपार धन सम्पत्ति लेकर जब मुसलमान जब सुल्तान महमूद गजनी वापस लौटने लगा तो उसे समाचार मिल कि सोमनाथ के मंदिर के विध्वंस से घबड़ा जाने के विपरीत हिन्दू जनता उत्तेजित हो उठी हैं और उसके मार्ग में मालवा का नरेश अपनी विशाल सेना लेकर समरांगण में उसकी वापसी की प्रतीक्षा कर रहा हैं। महमूद ने इस नवीन युद्ध संकट को झेलने का साहस नहीं दिखाया। फलतः अपनी पूर्व प्राप्त विजय पर ही संतोष करके मालवा का सीधा मार्ग छोड़कर वह सिन्धु के मरुस्थलीय, दुर्गम और अनपेक्षित मार्ग से लौटा। इस मरुस्थलीय मार्ग को अपनाने के कारण उसकी सेना को भयंकर कष्टों एवं दुर्गतियों का सामना करना पड़ा। गजनी पहुंचने के तीन – चार वर्ष बाद ही सन् 1030 में सुल्तान महमूद की मृत्यु हो गई।

गजनी के इस पराक्रमी किन्तु धर्मोन्मत सुल्तान ने भारत पर कम से कम 15 बड़े आक्रमण किये। हिन्दुओं ने भी यद्यपि उसका प्रबल प्रतिकार किया परन्तु कोई भी हिन्दू राजा उसे पराजित न कर सका। मुहम्मद के इन आक्रमणों के तथा उसकी इन राजकीय विजयों

के कारण हिन्दुओं की उतनी चिरकालीन हानि नहीं हुई जितनी कि वायव्य और पंजाब प्रांत में उसके द्वारा लाखों हिन्दुओं के बलात्कारपूर्वक किये धर्मान्तरण के कारण हुई। इसके आगे का इतिहास इस बात का साक्षी हैं कि महमूद द्वारा विजित राज्य हिन्दुओं ने पुनः जीत लिये। परन्तु बलात् धर्मन्तरित किये गये हिन्दुओं को धार्मिक दृष्टि से फिर नहीं जीता जा सका। हमने अपने राष्ट्र के भूखण्डों की खोई हुई स्वतंत्रता प्राप्त कर अपना राज्य पुनः स्थापित कर लिया लेकिन हिन्दू राष्ट्र की क्षीण होने वाली इस संख्या शक्ति की पूर्ति नहीं कर पाये।

धर्मान्तर अर्थात राष्ट्रान्तर

तत्कालीन हिन्दू धर्माचार्यो के मतानुसार कौन कौन से आचरण शास्त्रसम्मत थे और किस प्रकार के सदाचरण का पालन करने अथवा अपने किस दुराचरण के कारण हिन्दू धर्मभ्रष्ट समझें जाते थे। इस विषय का और उस कालखण्ड में हुए हिन्दू मुस्लिम महायुद्ध में बलात्कारपूर्वक हिन्दुओं का मुसलमान बनाये जाने का जिन बातों से अधिक सम्बन्ध हैं उनके उन धार्मिक धारणाओं की कुछ चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि तत्कालीन हिन्दू समाज के जाति भेद छुआछूत धार्मिक असहिष्णुता आदि विचित्र धार्मिक विभ्रम हिन्दू राष्ट्र के लिए अत्यन्त ही घातक सिद्ध हुए तथा उसी कारण जोर जबरदस्ती मुसलमान बना लिये जाने वाले हिन्दू मुसलमान ही बने रह गये। इतना ही नहीं तो उन धर्मान्तरित मुसलमानों की संख्या मुसलमानों के रुप में पीढी दर पीढी बढ़ती ही गई। जन्मतः मुस्लिम संस्कारों में पलने के कारण उनकी भावी पीढ़ियाँ अधिक कट्टर मुसलमान बनती गई। उनकी कट्टरता इस मात्रा में बढ़ गई कि आगे चलकर जब वायव्य दिशा की ओर से ईरानी तुर्क मुगल इत्यादि अनेक परकीय मुसलमानों ने बार बार आक्रमण किये तो नई पीढ़ी के सहस्त्रों मुसलमान उनकी सेनाओं में भरती हो गये और वे भी उन आक्रमणकारी विदेशी मुसलमानों के समान ही आवेश घृणा एवं द्वेष के वशीभूत हो हिन्दू काफिरों का मूलोच्छेदन करने और उनका धर्मान्तरण करके मुसलमान बनाने के उद्देश्य से हिन्दूराष्ट्र पर झपटनें लगे। ऐसी सैकड़ों घटनाओं में से यहां एक घटना उदाहरणस्वरुप प्रस्तुत की जा रही हैं-

उस समय सिन्ध नदी के उस पार के प्रदेश में धूरी नामक हिन्दुओं की एक जाति निवास करती थी। उसकी सम्पूर्ण जनसंख्या परिस्थितियों के कारण मजबूर होकर मुसलमान बन गई थी। परन्तु कुछ काल बाद हिन्दुओं की कट्टर शत्रु बन गयी। कुख्यात हिन्दू द्वेषी सुल्तान मुहम्मद गोरी इसी हिन्दू जाति का था। वास्तविकता तो यह हैं कि अफगानिस्तान पठानिस्तान बलूचिस्तान आदि के मुसलमानों में से बहुसंख्यक मुसलमान उन प्रांतो के मूल निवासी हिन्दुओं के ही धर्मान्तरित वंशज थे। परन्तु कालान्तर से उन्हें इस बात का विस्मरण हो गया कि उनके पूर्वज कभी हिन्दू ही थे। इतना ही नहीं तो इस सम्बन्ध में किसी के द्वारा इस बात की जानकारी दिये जाने पर उन्हें चिढ़ सी होती थी कि भूतकाल की बात चाहे जो भी रही हों आज तो हम जन्मतः इस्लाम के बन्दे और मुस्लिम राष्ट्र के अंग हैं। हिन्दू काफिरों के साथ अब कट्टर शत्रुता के अतिरिक्त हमारा कोई अन्य नाता नहीं हैं। इस प्रकार की दुर्भावना से उनका अन्तःकरण परिपूर्ण रहता था। उनका केवल धर्म ही नहीं बदला था बल्कि इस धर्मान्तर का धर्मान्तरित हुए हिन्दुओं पर जो अवश्यम्भावी परिणाम होना चाहिए वह भी हुआ। परिणामस्वरुप उन धर्मान्तरित हिन्दू वंशजो का राष्ट्रान्तर भी होता रहा। धर्म के साथ ही साथ उनकी राष्ट्रीयता भी बदलती रही। प्रारम्भिक मुस्लिम आक्रमण के जिन पांच सात शताब्दियों के विषय में हम यहां लिख रहे हैं तत्कालीन परिस्थिति में आज का धर्मान्तर कल का राष्ट्रान्तर सिद्ध होता गया।

यहां प्रयुक्त धर्म शब्द का अर्थ

उपर्यूक्त सूत्र धर्मान्तर अर्थात् राष्ट्रान्तर में धर्म और धर्मान्तर शब्दों की योजना किस अर्थ में की गई। इसका स्पष्टीकरण आवश्यक हैं। विभिन्न धर्मो अथवा स्वतंत्र दर्शन के तत्वज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन करने तथा उनमें से व्यक्तिगत रुप से स्वीकार करने योग्य गुणों का आचरण करने के अर्थ में यहां धर्म और धर्मान्तर शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया हैं। अमुक पुस्तक ईश्वर प्रेषित हैं। उसकी दो जिल्दों के मध्य में जो बताया गया हैं वह और केवल वही धर्म हैं और उसके अतिरिक्त अन्य सब असत्य और पापपूर्ण हैं इस प्रकार के अहंकार से जो धर्म संस्था उस धर्म के तथाकथित तत्वज्ञान को ही नहीं तो आचार विचार निबंध नियम कानून व्यवहार भाषा आदि को भिन्न धर्मावलम्बियों पर उपदेश के बल पर थोपने में असफल होने के कारण कपट क्रूरता एवं बलात्कार तक से थोपने में संकोच का अनुभव नहीं करती ऐसी आक्रामक धार्मिक संस्थाओं के धर्म के लिए ही उपयुक्त सूत्र में धर्म शब्द का प्रयोग किया गया हैं। राष्ट्रान्तर ऐसी धार्मिक संस्थाओं द्वारा किये धर्मान्तर का ही परिणाम होता हैं।

जाति बहिष्कार का प्रति-अस्त्र

हिन्दुओं के पास मुसलमानों के उस धार्मिक आक्रमण का प्रतिकार करने योग्य रामबाण सरीखा कोई प्रति अस्त्र नहीं था। मुसलमानों के इस धार्मिक आक्रमण के प्रतिकार के लिए उन्होंने जाति बहिष्कार को प्रति अस्त्र के रुप में प्रयोग किया। यह अस्त्र उल्टा उनके ही उलट पड़ा। जाति-बहिष्कार के प्रत्यस्त्र के उपयोग से स्वधर्म रक्षा होने की अपेक्षा उसका स्वधर्म घातक रुप किस प्रकार बनता गया इसे समझने और हिन्दू मुस्लिम धर्मयुद्ध से सम्बन्धित उसके स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से बिल्कुल संक्षेप में ही क्यों न हो मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के भ्रष्टीकरण का विश्लेषण करने के लिए पहिले जाति व जाति भेद का उल्लेख करना अपरिहार्य हैं।

जन्म-जात जाति-भेद की प्रथा और जाति-बहिष्कार की राष्ट्रीय सजा

हिन्दुओं पर मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ होने के बहुत पहिले से अर्थात् हिन्दुओं द्वारा हूणों का समूलोच्चाटन करने के पश्चात से ही हिन्दुओं के सैकड़ों नेताओं ने एक बार फिर से हिन्दू समाज एवं हिन्दू राष्ट्र की राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक सुस्थिति लाने की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर एक बहुत बड़ा सर्वागीण प्रयास प्रारम्भ किया था। तत्कालीन हिन्दू राष्ट्र का राजकीय नेतृत्व उस समय के उदयोन्मुख राजपूतों के प्रतापी राजघरानों को प्राप्त हुआ। उस पुनर्रचना के प्रयास में विशाल हिन्दू समाज की व्यवस्था जातिभेद की चौखट में जमाकर बिठाई जा रही थी। धीरे धीरे उस जाति भेद की प्रथा को ही जन्म जात जाति भेद का अपरिहार्य रुप प्राप्त हुआ। पहिले के चार वर्णो में ही नहीं तो उन चार वर्णो के पेट से निकले तथा अन्यान्य गौण जाति प्रवाहों की अभिवृद्धि होते होते अन्त में सुदृढ़ रुप में तथा शास्त्र की अनुमति से इतना ही नहीं तो प्रायः सर्व सम्मति से यह हिन्दू जाति सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से चार हजार अर्न्तगत जन्मजात् जातियों में विभाजित हो गयीं। यह परिवर्तन उस काल की वैदिक हिन्दू राष्ट्र की सामाजिक स्थिति की आवश्यकता के कारण ही घटित हुआ।

इस जन्मजात जाति भेद का यह मूल सूत्र था कि जो जिस जाति में पैदा हुआ हैं वह उसी जाति में रहेगा। बहुत सी जातियों में अन्य जातियों के साथ रोटी पानी का व्यवहार भी दण्डनीय माना जाने लगा। इसे देखते हुए यह कहने की क्या आवश्यकता हैं कि एक जाति की लड़की दूसरी जाति वाले को लेने देने में कड़ा प्रतिबन्ध था? हमारे जातिभेद पर लिखे गये अनेक लेखों में उस काल के इन्हीं जाति सरकारों के रुप में धार्मिक आचरणों को हुक्काबन्दी, पानीबन्दी, लोटाबन्दी, बेटीबन्दी, स्पर्शबन्दी, और जिसका वर्णन हम आगे करने वाले हैं-

उस शुद्धिबन्दी सिन्धुबन्दी आदि सात नाम दिए गए हैं। हिन्दुओं की प्रगति में बाधा डालने वाली ये सात बन्दियाँ मानों सात बेड़ियां अपने हिन्दू राष्ट्र के पैरो में किसी मुसलमान, ईसाई या किसी अन्य पर राष्ट्रीय म्लेच्छों ने बलपूर्वक नहीं जकड़ी अपितु स्वयं हिन्दुओं ने ही बुद्धि विभ्रम के कारण स्वधर्म की रक्षा के ताबीज के रुप मे इसे अपने पैरों पर ठोक लिया। इसलिए हम उन्हें विदेशी बेड़ियां न कहकर सात स्वदेशी बेड़िया कहना ही उचित समझते हैं।

इस पुस्तक में जन्म जात जाति भेद की सर्वागीण चर्चा करना आवश्यक नहीं हैं। उसके लिए स्थान भी नहीं हैं। इसके विषय में मेरा विचार जानने के इच्छुक लोगों को चाहिए कि वे मेरे द्वारा लिखित जन्म जात जात्युच्छेदक निबंध विषय से सम्बन्धित ग्रन्थ को ही पढ़े। यहां हमारे विधर्मी शत्रुओं के धार्मिक आक्रमणों की चर्चा के प्रसंग में जितनी आवश्यक हो उतनी ही चर्चा हम नीचे कर रहे हैं।

सर्वप्रथम हमें इस बात का स्मरण करना चाहिए कि हिन्दू समाज के विशाल संगठन एवं उसकी आश्चर्यजनक स्थिरता के लिए परिस्थितिवश और किन्ही विषयों के कारण जातिभदे की इस प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ होगा। इस संस्था की मीमांसा करते समय केवल उसके दुष्परिणामों का अंतिम रुप दिखाना कोरी कृतघ्नता ही कही जायेगी। अपना सामाजिक बीज रक्त संकरता के कारण विकृत न हो जाय और जाति जीवन एवं परम्परा शुद्ध बनी रहे इस दृष्टि से तत्कालीन धर्मावलम्बियों ने हिन्दू राष्ट्र के हित के विचार से जन्मजात जन्मना जाति भेद का निर्माण किया या उसे स्वयं स्फूर्ति से निर्मित होने दिया इस तथ्य को भी हमें स्वीकार करना चाहिए। स्मृतिकारों ने उस समय जितना सम्भव था उतनी दूरदर्शिता से अनुवंश विज्ञान, श्रमविभागात्मक, अर्थव्यवस्था, सामुदायिक सहजीवन इत्यादि तत्वों का विचार करके उन्हें संस्था की रचना में अनुस्यूत किया था। हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। हजारों संकट गुजर गये, परन्तु चाहे वे तथाकथित स्पृश्य हो गये हों चाहे अस्पृश्य कोटि कोटि हिन्दुओं के मन पर इस जाति भेद संस्था ने अपना अमिट प्रभाव डालकर उसके प्रति उन्हें मोहासक्त कर लिया। परिणामस्वरुप परिया, भंगी, धीवर, भील, वैश्य, जाट, क्षत्रिय, ब्राहमण आदि हिन्दुओं की जातियों और उनकी हजारों उप जातियों की श्रद्धानुसार उनका एक एकनिष्ठ विश्वास उत्पन्न हुआ कि यह मर्यादित जाति धर्म ही इहलौकिक कल्याण साधन कराने वाला भगवान की कृपा का सम्पादन कराने वाला और अपने अपने कुल को पवित्र कराने वाला सदाचार हैं। यह विश्वास जाति भेद की

जड़ मूल सैकड़ों वर्ष के हिन्दू राष्ट्र के सर्वजातीय जीवन में गहरे पैठे बिना उत्पन्न नहीं हो सकता असंश्य जाति समूहों के कारण विच्छिन्न दिखने वाले राष्ट्र में भीतर से किसी एकात्म स्वत्व की अदम्य भावना का स्फुरण उसमें संचारित होने वाले जीवनरस के बिना कदापि सम्भव नहीं हो सकता था। ऊपर से भिन्न दिखने वाले इस जाति भेद के स्वायत किन्तु संयुक्त संघ को जिस आन्तरिक अंतर्यामी एवं अनिवार्य एकात्म भावना ने एकजीव कर रखा था उस राष्ट्रीय भावना का ही नाम था हिन्दुत्व हिन्दू धर्म।।

जाति बहिष्कार के दुष्परिणाम

रोटीबंदी बेटीबंदी इत्यादि उस समय के लिए जिन छुआछूत वाले मुख्य धर्माचरणों को हम आज सात स्वदेशी बेड़िया कहते है वे उस काल में हिन्दू धर्म पर मुस्लिम आक्रमण के समय हिन्दू समाज को जकड़ कर रखने वाली बेडियां नहीं अपितु अपने राष्ट्र शरीर द्वारा अंगीकृत रत्नजड़ित एवं अभिमंत्रित रक्षाबंधन प्रतीत होती थी। प्रत्येक जाति को फिर चाहे वह ब्राह्मणों की हो अथवा भंगियो की अपनी जाति पर पूर्ण गर्व था।

हिन्दूओं की इन समस्त जातियों में यदि किसी व्यक्ति द्वारा जाने या अनजाने में उपर्युक्त जातीय आचरण भ्रष्ट हुआ, अगर किसी ने किसी दूसरी जाति के हाथ का पानी पी लिया अथवा किसी दूसरी जाति के व्यक्ति के साथ जानबूझकर या अनजाने में शरीर सम्बन्ध कर लिया तो ऐसे जातीय धर्म के विपरीत आचरण करने वाले हिन्दू को जो कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी 'जाति बहिष्कार' अर्थात् 'उसका हुक्का-पानी बन्द।'

जाति बहिष्कार शब्द का उच्चारण आज तो हम सहजता एवं निर्भयता के साथ कर सकते हैं। परन्तु मुसलमानों के उस धार्मिक आक्रमण के काल में और उसके बाद में भी अनेक शतकों तक हिंदू समाज का कोई भी व्यक्ति कुटुम्ब अथवा वर्ग जाति बहिष्कार का दण्ड सुनते ही कांप उठता था। जाति पंचायत अथवा शंकराचार्य आदि धर्म पीठों द्वारा जिस हिन्दू को जातिबंदी का दण्ड मिलता था वह फिर चाहे राजमुकुटधारी राजा ही क्यों न हो थरथर कांपने लगता था। जाति जाने का अर्थ था दुनियाभर से संबंध विच्छेद हो जाना जीवन समाप्त हो जाना। उस बहिष्कृत व्यक्ति को उसका इतना दुखद परिणाम भोगना पड़ता था। कि उसके अपने खास मां बाप सगे सम्बन्धी बंधु बांधव तक के सम्बन्ध टूट जाते थे। संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उस काल में किसी भी व्यक्ति को शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड की अपेक्षा जाति बहिष्कार के दण्ड का सर्वाधिक भय था। इसके कारण विभिन्न जातीयों के शास्त्र-स्मृति मर्यादित और व्यवस्थित हुए रुढ़ आचार-व्यवहार के दासतापूर्वक पालन करने की प्रवृत्ति हिन्दू समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी स्वयमेव स्वाभाविक रुप से चलती जाती थी।

जाति-भेद प्रथा द्वारा हिन्दू समाज को शक्ति प्रदान करने वाले एवं उसके जीवन पर दूरगामी परिणाम डालने वाले स्वरुप का ऊपर के समान हम कृतज्ञतापूर्वक चाहे जितना उल्लेख करें तो भी उक्त प्रथा के कारण मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण के कारण हिन्दू समाज को जो अपरिमित क्षति उठानी पड़ी उसके लिए जातिभेद प्रथा की आवश्यकतानुसार कड़ी आलोचना न करना हिन्दू जगत के साथ कृतघ्नता ही होगी।

जाति भेद का यह कुंठित अस्त्र मुसलमानों पर धार्मिक प्रथ्याक्रमण करके उनका विनाश करने के कार्य में तनिक भी उपयोगी नहीं हुआ। इतना ही नहीं तो इस जाति भेद के धर्माचरण के कारण ही हिन्दू जाति और हिन्दू राष्ट्र पर धर्मान्तरण के संघर्ष मे घोर अनर्थकारी परम्पराएं भी थोपी गयी। जिसके कारण मुसलमानों के लिए कोटि कोटि हिन्दुओं का धर्मान्तरण करना सरल हो गया। इसके विपरीत इसी कारण मुसलमानों को हिन्दू बनाने का कार्य हिन्दुओं के लिए नितांत असम्भव हो गया। इस तथ्य की सच्चाई से आज भी कोई इंकार नहीं कर सकता।

हिंदुस्थान में आने के पूर्व अरबदि के मुसलमानों ने ईरान, तूरान और मध्य एशिया के राष्ट्रों एवं अफ्रीका के मिस्त्र, इजिप्त देश से लगाकर यूरोप के स्पैन तक के राष्ट्रों के ईसाइयों, पारसियों आदि गैर मुस्लिम धर्म के लाखों अनुयायियों को भी तलवार के बल पर अत्याचार एवं बलात्कार पूर्वक मुसलमान बनाया था। परन्तु उन्होंने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि मुसलमानों के साथ रोटी संबंध होने मात्र से वे भी उनके सहधर्मी हो गये और उनका मूलधर्म ईसाई इजरायली अथवा अन्य धर्म नष्ट हो गया। इन राष्ट्रों को मुसलमान बनाये रखने के लिए मुसलमानों ने सैकड़ों वर्षो तक उनके सिर पर अपनी धर्मान्धता की तलवार लटकाये रखी। सैकड़ों वर्षो तक उन पर मुस्लिम सत्ता का कठोर पहरा लगा रहा। परन्तु जिस किसी भी भूभाग से जैसे ही मुस्लिम सत्ता समाप्त होती वैसे ही एक झटके के साथ वे राष्ट्र मुसलमानों का हरा झण्डा फेंककर अपने पूर्वजो का धर्म और उनका झण्डा फहरा देते थे। ऐसी दशा में ईसाई और

इजराइली आदि धर्मावलम्बियों को धर्मान्तरण के बाद मुसलमान बनाये रखना राज्य शक्ति के लिए अत्यन्त ही दुष्कर हो गया। मुस्लिम राज्य शक्ति को शताब्दियों तक अपने सशस्त्र सैनिकों द्वारा सतर्कतापूर्वक केवल इस बात की देखभाल करनी पड़ती थी कि ये धर्मान्तरित लोग मुस्लिम धर्म के विरुद्ध अथवा अपने धर्म में वापस जाने के लिए कोई षड्यंत्र या विद्रोह तो नहीं कर रहे हैं।

इसी प्रकार जब स्पेन, ग्रीस और सर्बिया आदि देशों के मुसलमानों पर जबरदस्ती धर्मान्तरण करने का अवसर आया और उन्हें ईसाईयों ने कत्लेआम की धमकी देकर धर्मान्तरित किया तो उन धर्मान्तरित मुसलमानों को ईसाई बनाये रखने के लिए उन ईसाई राजसत्ताओं को भी आवश्यकतानुसार सशस्त्र कड़ा पहरा रखना पड़ता था। क्योंकि धर्मान्तरित मुसलमान यह नहीं मानते थे कि ईसाईयों के साथ शरीर सम्बन्ध होने मात्र से वे सदैव के लिए स्वधर्म भ्रष्ट होकर ईसाई बन गये। उनका धर्म नष्ट हो गया। इसके विपरीत वे मुसलमानों ईसाई राजसत्ता के कमजोर होते ही तत्काल विद्रोह करके अपने कंधे से ईसाई धर्म का जुआ फेंककर अपना पूर्ववर्ती इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेते थे। उस समय उन्हें हरे रंग का जो भी वस्त्र मिल जाता उसे ही अपना झण्डा बनाकर फहरा देते थे। इतना ही नही ंतो वहां निवास करने वाले अन्यान्य ईसाइयों को बलात मुसलमान उनके द्वारा मुसलमानों पर किये गये अत्याचारों का बदला भी लेते थे।

उपर्युक्त अनुभव के आधार पर ही अरब आदि के मुसलमान विजेता इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को मुसलमान बनाये रखने के लिए कम से कम सौ दो वर्षो तक तो सैन्य शक्ति के बल पर उन्हें मुसलमान धर्म में पकड़कर जबरदस्ती रखना ही पड़ेगा। परन्तु उनकी यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई। मुसलमानों ने जब सिन्धु पर आक्रमण किया और अपने शस्त्रबल से हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना प्रारम्भ किया तो उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दुनियाँ के अन्य धर्मावलम्बियों की अपेक्षा अधिक धर्मिष्ठ और कट्टर होने के कारण हिन्दुओं को यद्यपि मन से मुसलमान बनाना कठिन हैं तो भी वे सरलतापूर्वक शरीर से मुसलमान बनाये जा सकते हैं।

उपर्युक्त बात केवल मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण के सम्बन्ध में ही लागू नहीं होती अपितु इस्लाम धर्म के प्रादुर्भूत होने के पूर्व ईस्वी सन् के प्रथम चार शतकों में मलाबार के हिन्दू राजा की उदारता का दुरुपयोग कर उनके आश्रित सीरियन ईसाईयों ने भी जब हिन्दुओं का धर्मान्तरण करना प्रारम्भ किया तो उन्हें भी यह विदित हुआ कि केवल रोटी का एक टुकड़ा या एक कौर भात उनके मुंह में ठूंसकर उन्हें स्वधर्म से भ्रष्ट किया जा सकता हैं। जिस कुएं से हिन्दू पानी पीते थे उसमें जूठीं डबल रोटी का टुकड़ा बिस्कुट अथवा गोमांस का टुकड़ा आदि पदार्थ डाल देने मात्र से उक्त कुएं के पानी पीने वाले समस्त हिन्दू अन्न, जल, सहवास संपर्क के कारण जीवन भर के लिए धर्मभ्रष्ट हो जाते थे। उन्हें और उनकी सन्तानों को फिर हिन्दू धर्म में लेने के लिए कोई भी तैयार नहीं होता था।

और जब पन्द्रहवी सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगीज आदि यूरोपियन ईसाई अपनी सैन्य शक्ति के साथ समुद्री मार्ग से हिन्दुस्थान में प्रविष्ट हुए तो वे भी उपरिलिखित छुआछूत और धर्म का भोलापन देखकर बड़े आनन्दित हुए। यह विचार कर वे फूले नहीं समाये कि इन मूर्ख हिन्दुओं के हिन्दुस्थान को देखते देखते ईसाई बना डालेंगें।

भ्रष्टों के पैरों में शुद्धिबन्दी की बेड़ी

परकीय राष्ट्रों के सशस्त्र राजकीय आक्रमणों का प्रतिकार करने के लिए हिन्दुओं के शास्त्रागारों में अमोघ अस्त्र पहिले से ही तैयार रहते थे। शत्रु के साथ समरांगण में प्रत्यक्ष तलवार लड़ाकर हिन्दुओं ने उन राजकीय आक्रमणों का अनेक बार सफलतापूर्वक सामना किया था। परन्तु उस काल के हिन्दुओं के शस्त्रागारों में परकीयों के इस धार्मिक आक्रमण को समाप्त करने वाली तलवार प्रारम्भ से ही नहीं थी। फलस्वरुप वे हिन्दू मुसलमानों के भ्रष्टीकरण के अभूतपूर्व आक्रमण का सामना करने के लिए अपनी जाति बहिष्कार का कृपाण लेकर टूट पड़े। जिन्हें मुसलमान बलात् धर्मभ्रष्ट करते उन्हें हिन्दू अपनी जाति बहिष्कार की प्रचलित रुढ़ि के आधार पर कठोरतापूर्वक निकाल बाहर कर देते। मुसलमानों के पंजाब पहुंचने तक धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं की संख्या कई लाख हो गई। उनमें से बहुतों की इच्छा थी कि वे हिन्दु धर्म में पुनः वापस आ जायें। परन्तु हिन्दुओं के इस जाति बहिष्कार के कठोर विधान में शुद्ध होकर हिन्दू धर्म अथवा समाज में वापिस आने का न तो कोई पर्याय था और न प्रायश्चित ही। यह बात भी उस काल के हिन्दुओं के जातीय प्रकरणों की रोटी बन्दी बेटी बन्दी आदि बेड़ियों के अनुरुप ही था। फलतः एक बार जो हिन्दू भष्ट होकर मुसलमान बन जाता था उसके

लिए इस शुद्धिबन्दी की मानव निर्मित बेड़ी के कारण हिन्दूधर्म में पुनःवापस आना असम्भव हो जाता हैं। इसके परिणामों की आवश्यक छानबीन न करते हुए यह बेड़ी भी हिन्दू समाज के पैरों में बलपूर्वक ठोक दी गई। हिन्दुओं ने धर्मभ्रष्टों को जाति बहिश्कार का दण्ड देकर हिन्दूराष्ट्र के पैरों पर कुल्हाड़ी मार दी।

मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं को धर्मान्तरित करने वाले भयानक आक्रमण को रोकने के लिए हिन्दू समाज ने जाति बहिष्कार का दण्ड देना प्रारम्भ किया। अर्थात जो हिन्दू अवसरवादी बनकर अपना स्वार्थ साधने या राजसत्ता प्राप्त करने के लिए स्वयं की हित की दृष्टि से स्वधर्म द्रोह का महत्पाप करके मुसलमान धर्म स्वीकार कर धर्म भ्रष्ट थे यदि उन्हीं को जाति बहिष्कार का दण्ड दिया जाता तो उचित था। क्योंकि फिर स्वयं के स्वार्थसाधन के लिए कोई भी हिन्दू धर्मान्तरण करके मुसलमान न बनता। इस प्रकार के प्रतिबन्ध के रुप में जाति बहिष्कार का कुछ अंशों में उपयोग किया जा सकता था। परन्तु जिन्होंने स्वयं ही मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया उन धर्मद्रोहियों के सम्बन्ध में इसका उपयोग करने की तनिक भी संभावना नहीं थी क्योंकि उन पापियों ने हिन्दू जाति के साथ अपने समस्त सम्बन्ध स्वयं ही विच्छेद कर लिये थे। ऐसे धर्मान्तरित हिन्दुओं को शुद्धिबंदी की अपरिवर्तनीय सजा दिया जाना आत्मघातक ही था। यदि उन हिन्दुओं के मन में आगे पीछे कभी अपने धर्म में पुनः प्रविष्ट होने की इच्छा जागृत होती तो उनके शुद्धीकरण का मार्ग खुला रहना चाहिए था।

इस दण्ड की उपयोगिता किसके लिए थी?

इस दण्ड की उपयोगिता स्वेच्छा से धर्मान्तरण करने वाले हिन्दुओं के लिए ही थी। परन्तु इस प्रकार स्वेच्छा से मुसलमान बनने वाले हिन्दुओं की संख्या अत्यंत ही अल्प थी लाखों में एक। लेकिन यह अत्यंत ही खेद की बात हैं कि मुस्लिम आततायियों द्वारा तलवार के बल पर बलात् धर्मभ्रष्ट किये गये निरपराध हिन्दुओं पर भी शुद्धिबंदी का कूर कठोर और स्वधर्मनाशक वज्रघात किया गया। पहिले ही मुसलमानों के अत्याचार से त्रस्त विकल और स्वधर्म हानि की ग्लानि से आत्मदाह करने के लिए तत्पर इन लाखों हिन्दुओं को यह एक और दण्ड दिया गया। जाति बहिष्कृत व्यक्ति को उसके अपने मां बाप, भाई, बहन, पति, पुत्रादि उसे जीवन भर कभी अपना कहकर स्वीकार नहीं कर सकते थे। उनके लिए कोई ऐसा मार्ग शेष नही था कि वे शुद्ध होकर पुनः हिन्दू बन सके।

चोर को छोड़ दिया और साहूकार को फांसी दी

मुस्लिम अत्याचार और उनके धार्मिक आक्रमण एवं बलात्कार के शिकार हुए निरपराध लोगों को तो जाति बहिष्कार का दण्ड मिला लेकिन यह कुकृत्य तथा राक्षसी अपराध करने वाले मुसलमानों पर जाति बहिष्कार के शस्त्र का कोई भी आघात नही लगा। उनका बाल भी बांका नही हुआ। चोर को छोड़ दिया और साहूकार को फांसी दे दी गई। धर्मान्तरित हिन्दुओं को दिये जाने वाले जाति बहिष्कार के दण्ड ने मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण को प्रत्यक्ष और पर्याप्त प्रमाण में सहायता पहुंचाई।

यहूदी ईसाई इत्यादि अत्यन्त अहिन्दू राष्ट्र से सम्बन्धित उपर्युक्त वर्णन के अनुसार उन्हें भ्रष्ट करने के पश्चात् मुसलमानों को उन पर सौ सौ वर्ष तक सशक्त और कठोर पहरा रखना पड़ता था। लेकिन हिन्दुस्थान के लक्षावधि हिन्दुओं को अत्यन्त ही कूरतापूर्वक मुसलमान बनाने के बाद उन्हें सदैव के लिए मुसलमान बनाये रखने के लिए केवल एक दिन का ही कष्ट करना पड़ता था।

युद्ध में अथवा नगरों पर सशस्त्र आक्रमण करके हिन्दुओं को बलात् धर्म भ्रष्ट करने के लिए एक दिन केवल एक बार अन्न जल संभोग और सहवास करना पड़ता था। इतने मात्र से यह कार्य पूर्ण हो जाता था। फिर तो धर्मान्तरित हिन्दू स्वयं ही नहीं तो अपनी वंश परम्परा तक को भी मुसलमान बनाये रखने का अत्यन्त ही कठिन काम अपना धार्मिक कर्तव्य समझकर किया करते थे। जाति बहिष्कृतों की शुद्धिबंदी ही इसका एकमेव कारण था। एक बार का धर्मभ्रष्ट हिन्दू आजन्म

धर्मभ्रष्ट माना जाता था। सहस्रों वर्षों के उस प्रलयकारी हिन्दु मुस्लिम महायुद्ध में किसी हिन्दू को भ्रष्ट करके मुसलमान बनाना अत्यन्त ही सरल कार्य था। परन्तु एक हिन्दू के भ्रष्ट होने का, उसके मुसलमान बनने का तात्पर्य था एक मानव का राक्षस बनना, एक देव का दैत्य हो जाना। किस प्रकार की प्रक्रियाओं से हिन्दू धर्मभ्रष्ट होकर दैत्य अथवा राक्षस बन जाता था गत पृष्ठों में इसका संक्षिप्त उल्लेख किया जा चुका हैं।

फिर भी हिन्दू समाज की आँखे नहीं खुलीं, यदि सामुदायिक दृष्टि से विचार करना हो तो यह कहा जा सकता हैं कि हिन्दुओं की शुद्धिबंदी की धार्मिक रुढ़ि के कारण मुसलमानों को यह विश्वास हो गया था कि जिसे उन्होंने धर्मभ्रष्ट करके एक बार मुसलमान बना लिया वह सदैव के लिए मुसलमान हो गया। अपनी शुद्धिबंदी की रुढ़ि के कारण उसे वे कभी भी हिन्दू नहीं बना सकते। इस कारण मुस्लिम धर्म की रक्षा करने की उन्हें चिन्ता ही नहीं रह गई। जाति बदलने और धर्मान्तरण करने के बीच का यह राष्ट्रघातक भेद सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओं के ध्यान में नहीं आया।

यदि हिन्दू समाज का एक व्यक्ति अपने से छोटी समझी जाने वाली दूसरी जाति के साथ रोटी अथवा बेटी का व्यवहार कर लेता था तो उसे उसकी जाति छोड़ देती थी। उदाहरणार्थ- यदि वैश्य जाति का कोई व्यक्ति उस समय जातीय विधान के अनुसार अपने से छोटी समझी जाने वाली जाति दर्जी, भड्डरी इत्यादि किसी के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार कर लेता था तो उस वैश्य की जाति उसे छोड़ देती थी। उसी प्रकार यदि किसी हिन्दू को इस नये विधर्मी एवं मूलतः पतित माने जाने वाली म्लेच्छ जाति के साथ विवश होकर ही क्यों न हो रोटी-पानी का व्यवहार करना पड़ जाता, वह स्वयं या पत्नी सहित बलात् धर्मभ्रष्ट कर दिया गया होता तो उसे स्वयं या अपनी पत्नी के साथ जीवन भर मुसलमानो का गुलाम बनकर रहना पड़ता था। ऐसे हिन्दू को केवल उसकी जाति के ही लोग नहीं तो उससें छोटी समझी जाने वाली हिन्दुओं की अन्य जातियाँ भी ऊपर वर्णित वैश्य की तरह अर्थात् हिन्दू जाति-धर्म के विपरीत रोटी-बेटी आदि का व्यवहार हो जाने के कारण जाति बहिष्कृत होकर मुसलमान बन जाना, हिन्दुओं की दृष्टि में ये दोनों एक समान ही थें। इन दोनों के बीच का अन्तर और इस कारण हिन्दुओं की सामुदायिक संख्या पर होने वाले दूरगामी हानिकर परिणामों का राष्ट्रीय विभेद तत्कालीन हिन्दुओं के ध्यान में ही नहीं आया।

खान-पान के दोष के कारण यदि कोई अपनी जाति से विलग किया जाता था तो वह हिन्दू समाज से बाहर नहीं माना जाता था। वह या तो हिन्दू समाज की अन्य जातियों में मिल जाता था अथवा अपने ही समान सुख-दुःख वालों के साथ मिलकर एक स्वतंत्र नवीन जाति का ही निर्माण कर लेता था। परन्तु वह नवनिर्मित जाति हिन्दू समाज का ही अंग रहती थी। उसकी जाति बदल जाने के कारण उसका धर्म अथवा समाज नहीं बदलता था। आपसी रोटी-बेटी के कारण ये जाति-बहिष्कृत-हिन्दू समातज की परिधि से बाहर नहीं जाते थे। ऊपर का ही उदाहरण देखें तों यह बात स्पष्ट हो जायेगी कि उक्त वैश्य का बनियापन तो बदल गया लेकिन उसका हिन्दूपन पुर्ववत् अक्षुण और अखण्ड बना रहा अर्थात् इस प्रकार के जातीय बहिष्कार के कारण सम्पूर्ण हिन्दू समाज के संख्याबल को कोई हानि नहीं होती थी।

परन्तु जब इसी रुढ़ि के अन्तर्गत मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये किसी हिन्दू को 'शुद्धि बंदी' की बेड़ियों से जकड़कर जाति-बहिषकार का दण्ड दिया जाता था तो उसका हिन्दूपन छिन जाता था। मुसलमानों द्वारा बारम्बार किये गये धार्मिक आक्रमणों में वे इसी प्रकार हजारों हिन्दुओं को धर्मभ्रष्ट करते जाते थे और हिन्दू समाज उन धर्मान्तरितों को हिन्दू जाति से बहिष्कृत करता जाता था। फलतः उन्हें बाध्य होकर मुसलमान धर्म और समाज में रहना पड़ता था। इस प्रक्रिया के कारण हिन्दू राष्ट्र का संख्याबल दिनों दिन क्षीण होता गया।

जाति बहिष्कार और शुद्धिबंदी का प्रत्यस्त्र मुसलमानों का बाल भी बांका न कर सका। मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण और अत्याचारों को रोक पाने में वह **सर्वांगी** असफल रहा। अपितु इसके विपरीत इस प्रत्यस्त्र के कारण मुसलमानों

के अत्याचार और बलात्कार को उत्तेजना ही मिली। यह तथ्य महमूद गजनवी के काल की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो चरुका हैं। परन्तु उस समय धर्मभ्रष्ट हुए हिन्दुओं की कैसी दुर्दशा होती थी- इसकी एक झलक मात्र देने की दृष्टि से मुस्लिम इतिहासों में किये गये अनेक वर्णनों में से एक घटना का वर्णन हम उदाहरण के रुप में प्रस्तुत कर रहे हैं :-

महमूद गजनवी की चढ़ाई के समय जिन सहस्रों हिन्दुओं को गुलाम बनाकर ईरान, तूरान और **अरबथान** की ओर ले जाया जाता उनमें से कुछ हिंदू व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रुप से चकमा देकर कुछ समय बाद पंजाब में वापस भाग आते थे। महमूद गजनवी की मृत्यु के समय और उसके पश्चात् लगभग सौ वर्ष तक मुस्लिम सत्ता पंजाब तक आकर ही रुक गयी थी। हिन्दुओं के सशक्त विरोध ने उसे सौ वर्ष तक आगे नहीं बढ़ने दिया। इसके बाद मुसलमानों के चंगुल से छटककर हिन्दू गुलामों की टोलियाँ पंजाब की मुस्लिम सत्ता से भागकर राजस्थान के हिन्दू राजाओं की शरण में आने लगीं। इस प्रकार मुसलमानों में चंगुल से हमंशा के लिए छूट जाने पर वे बड़ा आनन्द मनाती थीं। वे इस बात से बड़े प्रसन्न होते थे कि अब फिर अपने हिन्दू कुटुम्ब, हिन्दू मंदिरों और समाज में सुखपूर्वक जीवन बिता सकेंगे। परन्तु हाय! दुर्भाग्यवश शुद्धिबन्दी के कारण उनकी यह इच्छा मृगतृष्णा मात्र बनकर ही रह जाती थी। उन टोलियों के हिन्दू राज में आने पर न केवल उनकी जाति के लोग ही अपितु हिन्दू समाज की कोई भी जाति उन्हें अपनी जाति में मिलाने अर्थात् हिन्दू धर्म में मिलाने को तैयार नहीं होती थी। क्योंकि उन्हें जाति बहिष्कार का कठोंर दण्ड जो मिला था। 'जो हिन्दू एक बार भ्रष्ट हुआ वह हमेशा के लिए भ्रष्ट हो गया।' शुद्धिबंदी के इस मूलसूत्र के अनुसार यदि उन हिन्दू राज्यों में भी उन्हें जीने की इच्छा हो तो मुसलमान बनकर ही जीना पड़ता था और फिर जब कोई सौ वर्ष बाद मुसलमानों ने नये-नये आक्रमण किये और भारत भूमि को विजित करते हुए दिल्ली ओर मध्य प्रान्त की ओर बढ़ने लगे तों वर्षों पूर्व भागे हुए गुलामों को हिन्दू राज्यों में मुसलमान बनकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। कारण उस समय मुस्लिम राज्यों में यदि कोई हिन्दू टोली हिन्दू बनकर रहना चाहती तो या तो उसे जीवित ही न रहने दिया जाता था या फिर छल-बल से उसे मुसलमान बना लिया जाता। यह था मुसलमानी धर्म और उनका अनुभव।

परन्तु धर्मभ्रष्ट हुए हिन्दुओं को, हिन्दू धर्म में पुनः आने की इच्छा होने के बाद भी हिन्दू राज्यों में मुसलमान बनकर ही रहना पड़ता था। इसका कारण था, शुद्धिबंदी! और हिन्दू धर्म!!

हिन्दू धर्म के ऐसे लाखों अनुयायियों को, जिन पर मुसलमान धर्म से लड़ने का प्रसंग आ पड़ा और उस विषम संघर्ष में मुसलमानों ने उन्हें यदि अपने धर्म का बनाकर हिन्दुओं के प्रचण्ड संख्या बल की अपरिमित हानि की हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या हैं?

आश्चर्य तो इस बात का हैं कि इतनी कम हानि की होकर ही कैसे रह गई?

चौथा अध्याय

सद्गुण विकृति

उपर्युक्त कुछ अध्यायों में इस बात का विशद् विवेचन किया जा चुका हैं कि धर्मिक और राजकीय दोनों मोर्चों के विकट संघर्ष में हिन्दू धर्म की जितनी हानि मुसलमानों द्वारा नहीं हुई उससे भी अधिक हानि हिन्दुओं के रुढ़ जन्मना जाति-भेद के रोटी बंदी से लेकर शुद्धिबंदी तक की रुढ़ियों के कारण हुई। परन्तु इस जन्मना जाति-भेद के पागलपन के समान ही एक अन्य आत्मघामक मानसिक व्याधि भी हिन्दुओं के आक्रामक एवं प्रत्याक्रामक शक्ति को पंगु बनने और उनके विनाश का अपने में व्याप्त व्याधि की बेहोशी के कारण स्वयं ही पराजित हो गए बुद्धिनाश की इस व्याधि को क्या कहें? इसके कारण हिन्दुओं की जो अपरिमित हानि हुई इस विचार से और उसे कोई 'सौम्य' नाम देने का ध्यान रखते हुए उसे 'सद्गुण विकृति' की संज्ञा तो देना ही पड़ेगी। यह विकृति हैं परोपकार, दया, अहिंसा, परधर्मसहिष्णुता, शरणगतवत्सलता, शत्रु पर उपकार करना, परस्त्री का अपहरण न करना, शत्रु दारादाक्षिण्य, अपनी जान लेने के लिए आये हुए शत्रु को भी क्षमा करना इत्यादि का गलत पात्र और समय के अनुसार उपयोग।

सद्गुण और दुर्गुण

मनुष्य की मनुष्यता के लिए उनदेशित समस्त सद्गुण वस्तुतः पूर्णरुप से सभी गुण ही माने गये हैं। लेकिन ऐसा नहीं हैं कि कोई एक गुण सभी परिस्थितियों में सद्गुण ही बना रहता हैं। यहाँ संक्षेप में इतना बताना होगा कि कोई गुण मनुष्य जाति के हित की उपकारक मर्यादा तक ही व्यवहारिक और नीतिशास्त्र की दृष्टि से सद्गुण माना जाना चाहिए। जब वही गुण मनुष्य जाति के लिए अधःपतन का कारण एवं घातक सिद्ध होने लगता हैं तो वह दुर्गुण बन जाता हैं वह त्याज्य हैं।

संक्षेप में गुणों को तीन श्रेणियों में बाँटा गया हैं- सत् रज और तम। इस लिए इस सम्बन्ध में देश, काल और पात्र के विवेक की कसौटी अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दू संस्कृति में मानव को देवत्व तक पहुँचाने की आकांक्षा हैं। इस दृष्टि से उसमें सात्विक गुण भरने की पराकाष्ठा कर दी गई हैं। परन्तु संसार केवल 'सत्' के ही धागे से नहीं बुना गया हैं। उसमें सत्, रज और तम नामक तीन विभिन्न धागे लगे हुए हैं। और इसलिए जिसे संसार में विजेता बनकर जीना हैं, कम से कम जो अत्याचारियों और अन्यायियों से पराजित नहीं होना चाहता, उसे सत्,रज और तम तीनों ही परिस्थितियों की अवस्थाओं का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए त्रिशूलवत् साधनों का उपयोग करना होगा। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम महायुद्ध के समय हिन्दूराष्ट्र ने उन सद्गुणों की सापेक्षता का वर्णन करने वाली गीता का भी विस्मरण कर दिया। इतना ही नहीं तो तत्कालीन हिन्दुओं ने गीता के अर्थ का अनर्थ भी किया। उन्होंने गीता के मुख्य मर्म, पात्र-अपात्र की पहिचान का विवेक ही खो दिया।

तात्पर्य यह हैं कि उक्तांकित अवस्था उस समय के कोटि-कोटि हिन्दू समाज और हिन्दू राष्ट्र में सर्वत्र व्याप्त थी। हिन्दू समाज के उन कोटिक जनों मे अस अवस्था के असामान्य विरोधी और सामाजिक क्रान्ति के उद्घोषक आदि भी अपवादस्वरुप हजारों की संख्या में समय-समय पर उत्पन्न हुए। इन सबका दिग्दर्शन यथास्थान किया जा चुका हैं। आगे भी प्रसंगवश उनका उल्लेख किया जायेगा।

अनेक ग्रन्थों में 'शरणागत को जीवनदान' देने को एक सद्गुण के रुप में निरुपित किया गया हैं।इसी कारण मुहम्मद गोरी और नजीबखाँ सरीखे दुष्ट, हिन्दू राजाओं के हाथमें आने के बाद जीवित छोड़ दिये गये। 'भूखे को अन्न देना और प्यासे को पानी पिलाना' एक सद्गुण हैं, इस पाठ को रटकर नागों और सांपों को भी दूध पिलाना प्रारम्भ कर दिया। वे दुष्ट राक्षस मुसलमान हमारे पवित्र मन्दिरों का विध्वंस करते रहे, सोमनाथ की मूर्तियाँ तोड़ते रहे, फिर भी :-

'पराये ने दिया दुःख, बदला न लो भागो,
देगा दण्ड ईश्वर उसे, यह सोचकर चुपचाप बैठे

को साधुसन्तों ने सद्‌गुण निरुपित किया। इसी कारण अनुरुप परिस्थिति आने के बाद भी हिन्दुओं ने मुसलमानों की मस्जिदों का एक पत्थर भी नहीं तोड़ा।

जिन 'सद्‌गुणों' के कारण इस प्रकार के दुराचार और पंच महापातकों से भी भयानक पाप होते हों उनकी अपेक्षा ग्रन्थों में वर्णित महान से महान दुर्गुण भी मानव एवं राष्ट्रहितघातक नहीं कहे जा सकते। उन्हें कदापि धिक्कारा नहीं जा सकता। इसलिए जो विवेकशून्य और बुद्धिभ्रष्ट मनुष्य ऐसे गुणों को सद्‌गुण समझकर आचरण करते हैं, धर्म हठपूर्वक व्यवहार करते हैं उनको व्यक्तिशः और राष्ट्रशः नष्ट होने से कोई नहीं बचा सकता। उनका सर्वनाश अटल हैं। ऐसे गुण सद्‌गुण, नहीं 'सद्‌गुण की विकृति' होते हैं। जिन-जिन सद्‌गुणों का देश, काल और पात्र का विवेक खोकर ऊपर लिखे वर्णनों के अनुसार आचरण किया जात हैं वे सभी सड़े हुए खाद्यान्न के समान प्राणघातक विष की निर्मिति होती हैं।

यह बाधामृत कि 'परधर्म-सहिष्णुता सद्‌गुण हैं' प्रत्येक हिन्दू को माँ के दूध के साथ पिलाया जाता हैं।' परन्तु इस वाक्य का वास्तविक अर्थ कोई नहीं समझाता। अपने 'स्वधर्म' के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करने वाले 'परधर्म' के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करना सद्‌गुण हैं। परन्तु देश, काल, पात्र का विचार न करते हुए हिन्दू धर्म का निर्दयतापूर्वक विनाश और काफिरों के उच्छेदन को ही अपना मजहब समझने वाले मुसलमानों और ईसाइयों के धर्म के सम्बन्ध में यह व्याख्या लागू नहीं हो सकती। वहाँ उस 'परधर्म' और उसके असहिष्णु कृत्यों का बदला लेने और अत्याचार का अत्याचार से प्रतिशोध लेने वाली संक्रुद्ध असहिष्णुता ही सच्चा सद्‌गुण हैं।

इतिहास के प्रस्तुत अध्याय के ही विषय में यदि कहना हो तो प्रत्येक मुस्लिम आक्रान्ता ने मथुरा अथवा काशी के हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त किया। समस्त हिन्दुस्थान की अत्यन्त ही पूज्य पवित्र रामेश्वरम् तक की मूर्तियों को आगरा और दिल्ली ले जाकर उन्हें उल्टी करके हिन्दुओं की भावनाओं को कुचलने की दृष्टि से ही उन पवित्र मन्दिरो की मूर्तियों का मलमूत्रोत्सर्ग करने के स्थान पर फर्श बनाने के लिए उपयोग किया गया। इस प्रकार और ऐसे ही अन्य अनेक उत्पातो को ही अपना धर्म मानने वाले मुसलमानों के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करना 'सद्‌गुण नहीं सद्‌गुण की विकृति' ही कहा जायेगा। इतना ही नहीं तो हिन्दुओं की यह सहिष्णुता नारकीय पाप करने के समान थी। परन्तु हिन्दुओं ने इसी पापाचार को पुण्य समझकर आचरण किया। बीच-बीच में हिन्दुओं ने मुस्लिम राजसत्ताओं को तो कई बार ध्वस्त किया परन्तु राजसत्ता हाथ में आने के बाद भी उन्होंने काशी, मथुरा, रामेश्वरम् आदि में मुसलमानों द्वारा मन्दिरों के स्थान पर बनाई गई मस्जिदों को तोड़कर उनके अवशेषों को रास्ते के कंकड़ों-पत्थरों से मिलाकर उन्हें सद्‌गति नहीं दी। बहुत हुआ तो केवल इतना ही कि मुसलमानों द्वारा गिराये गये मन्दिरों को उन्होंने फिर से बना लिया। इसके विपरीत ऐसे अनेक आश्चर्यजनक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि अपने शासनकाल में हिन्दू राजाओं ने मुसलमान आक्रामकों द्वारा निर्मित मस्जिदों की स्थाई आय के लिए सम्पत्ति दाल में दी और साथ ही उनकी सुरक्षा का दायित्व भी ग्रहण किया। उस समय के हिन्दुओं की बुद्धिभ्रष्टता का एक बेजोड़ उदाहरण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। जिसमें 'सद्‌गुण विकृति' का स्पष्ट रुप से लज्जास्पद प्रदर्शन हैं। इसके बाद फिर इस सम्बन्ध में किसी को कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

महमूद गजनवी द्वारा प्रथम बार सोमनाथ मन्दिर ध्वस्त किये जाने के पश्चात हिन्दुओं ने वह प्रदेश पुनः जीतकर सोमनाथ मन्दिर का पुनरुद्धार किया। इसके बाद मुसलमानों ने आक्रमण करके इस मन्दिर को पुनः ध्वस्त कर दिया। इन्हीं संघर्षो के बीच उस प्रदेश में एक हिन्दू राजा की राजसत्ता स्थापित हुई। उक्त क्षेत्र का वैभव बढ़ने लगा और

सोमनाथ मन्दिर का पुनः विधिपूर्वक निर्माण किया गया। अरब से आने जाने वाले व्यापारिक जहाज उक्त समुद्रतट पर विश्रान्ति करने के लिए रुका करते थे। न्याय तो यह कहता हैं कि उक्त हिन्दू राजा को चाहिए था कि उस समुद्र से होकर अरबों का आवागमन बन्द कर देता। क्योंकि इन्हीं अरबी जहाजों के आवागमन के साथ अरबी सेना भी उस हिन्दू राजा ने अपजी परधर्मसहिष्णुता और उदारता का प्रदर्शन करने के लिए अरबों का आना-जाना रोकना तो दूर रहा उनके साथ ऐसे सौजन्यता का व्यवहार किया कि उन्हें लगने लगा कि जैसे वे अपने घर में ही आये हों। परन्तु अपने मुसलमानी स्वभाव या राजकीय कपट अथवा इससे भी आगे धार्मिक दम्भ के कारण उन अरबी मुसलमानों के मन में आया कि काफिरों द्वारा पुननिर्मित सोमनाथ मन्दिर को चुनौती देती हुई उसके सामने एक मस्जिद भी बनाई जाय। परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में इसे उदण्डतापूर्वक कर पाना सम्भव न हो सका। फिर क्या अपनी कटु कपटनीति से अत्यन्त ही दीनभाव के साथ मुसलमानों ने हिन्दू राज्य दरबार में मस्जिद बनाने के लिए अपना प्रार्थनापत्र भेजा। यह सुनकर किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि उस भोले हिन्दू राजा द्वारा उस प्रार्थनापत्र को सहर्ष स्वीकार कर लेने के परिणाम स्वरुप सोमनाथ मन्दिर के सामने हिन्दू धर्म को चुनौती देती हुई एक मस्जिद खड़ी हो गयी। चाहिए तो यह था कि उक्त क्षेत्र को अपने अधिकार में लाते ही महमूद गजनवी द्वारा किये गये सोमनाथ के विध्वंस का स्मरण कर वहाँ जितनी मस्जिदें थीं उन्हें भूमिसात् करके फिर सोमनाथ मन्दिर का पुनर्निमाण किया जाता। लेकिन उस हिन्दू राजा ने ऐसा नहीं किया। मुसलमानों की मस्जिदें गिराना तों दूर रहा हिन्दू राजाओं ने एक और नवीन मस्जिद बनाने की अनुमति दे दी। इतना ही नहीं तो उसके वार्षिक व्यय की भी व्यवस्था की गई। हिन्दुओं को अपनी इस परधर्म सहिष्णुता (सद्गुण विकृति) का दुष्परिणाम भी तत्काल ही भोगना पड़ा। कुछ काल बाद ही अलाउद्दीन आदि मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दुओं की इस परधर्म सहिष्णुता और उन व्यापारियों को मस्जिद बनाने की आज्ञा देने का बदला, गुजरात पर आकमण करके, सहस्रों हिन्दुओं का कत्लेआम, हजारों हिन्दू ललनाओं के साथ बलात्कार और हिन्दू मन्दिरों के विध्वंस के रुप में चुकाया।

अपने इस बदले में उन्होंने पुनर्निर्मित सामनाथ मन्दिर को भी सुरक्षित नहीं रहने दिया। अलाउद्दीन आदि मुसलमानों की उन बर्बर सेनाओं ने सोमनाथ मन्दिर को छिन्न-विछिन्न कर डाला। उनके अत्याचारों की इति भी यहीं नहीं हुई तो उन्होंनें सोमनाथ मन्दिर की वह दुर्दशा भी की जो महमूद गजनवी भी नहीं कर पाया था। उन अत्याचारियों ने सोमनाथ की मूर्ति और गर्भगृह की शिला दिल्ली ले जाकर एक मस्जिद की सीढ़ियों में चुनवा दी।

आगे चलकर एक बार पुनः हिन्दू सत्ता विजयी हुई। कुछ मन्दिरों का पुनर्निर्माण किया गया। लेकिन मुसलमाानों ने पुनः आकमण करके गुजरात पर अपनी चिरकालीन सार्वभौम सत्ता स्थापित कर ली। सुलतान अहमदशाह आदि मुसलमानों के सशस्त्र आक्रमणों, धार्मिक अत्याचारों, बलात्कार और मन्दिर विध्वंस आदि कुकृत्यों से त्रस्त होकर हिन्दू जनता में 'त्राहिमाम्' की पुकार उठने लगी। सहस्रों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर दुनियाँ के विभ्भिन्न देशों में बेचा गया। सोमनाथ का तो नामशेष हो गया लेकिन उस मस्जिद का महत्त्व पहिले से अधिक बढ़ गया। हिन्दू राजाओं की उदारता के कारण पुरानी मस्जिदें ज्यों की त्यों बनी रहीं। मुस्लिम राजाओं ने उन पुरानी मस्जिदों को वैभवशाली और भव्य रुप तो दिया ही साथ ही एक से एक बढ़कर अनेक ऊँची-ऊँची नवीन मस्जिदों का भी निर्माण कराया।

अपनी धार्मिक बेहोशी, सद्गुण विकृति, अन्धी परधर्मसहिष्णुता के वशीभूत हो हिन्दुओं द्वारा स्वधर्म का बलिदान करने की आत्मघतक वृत्ति का यह एक ज्वलंत प्रमाण हैं। मुसलमानों के आक्रमणों के उक्त काल में इस प्रकार के सद्गुण विकृति के उदाहरण कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के सम्पूर्ण देश में भरे पड़े हैं। उनका वर्णन कहाँ तक किया जाय? फिर भी हिन्दुओं की इस सद्गुण विकृति का एक और प्रमाण प्रस्तुत करता हूँ। गुजररात के अन्हिलवाड़ा प्रदेश का राजा सिश्रद्धराज बहुत ही पराक्रमी माना जाता था। उसमें न्याय-अन्याय का विवेक पर्याप्त

मात्रा में था। लेकिन था तों वह हिन्दू राजा ही। अर्थात् यह कहने की आवश्यकता नहीं हैं कि वह भी इस भ्रांति में फँसा हुआ था कि 'न्याय-अन्याय, स्वधर्म -परधर्म, उदारता-संकुचितता इत्यादि उक्त गुण स्वयंमेव सद्गुण हैं। इसमे देश-काल-पात्र का विचार करने की आवश्यकता नहीं है।' एक बार उसके राज्य में खंबाद (कैंबे) के पास हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हुआ। मुसलमान लेखक मुहम्मद ओफी उक्त झगड़े के सन्दर्भ में अपनी 'आमजवानी-उल-हिकायत' नामक पुस्तक में लिखता हैं कि 'एक बार काफिर हिन्दुओं ने अन्हिलवाड़ा राज्य पर आक्रमण किया। इस संघर्ष में अस्सी मुसलमान मारे गये। उनकी मस्जिद की मीनार गिरा दी गई। मस्जिदें जला ही गयीं। उस समय वहाँ के इमाम खतीब अली ने उस हिंदू की प्रशंसा में एक कविता लिखी। उक्त कविता में हिन्दुओं द्वारा मुसलमों पर किये गये अत्याचारों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हुए उसने विनती की, "हिन्दुओं से हमारी रक्षा करो।" उक्त विनती एवं कविता से प्रभावित होकर वह राजा गुप्त रुप से घटनाओं की जांच करने स्वयं गया।' उसे विदित हुआ कि हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों को क्षति पहुँची हैं। उस राजा ने राजा की उदारता, न्यायप्रियता, अलपसंख्यक परधर्मियों को आवश्यक सुविधाएँ देना, परधर्म सहिष्णुता आदि राजधर्म सम्बन्धी पुरानी पुराणपंथी बातें रट रखी थीं। परन्तु ऐसा प्रतीत होता हैं कि इन गुणों की ओर देखने की दृष्टि और इन वाक्यों का देश, काल, पात्र आदि का विवेक रखते हुए कैसे अर्थ लगाना चाहिए यह गुरुमंत्र बताने वाला चाणक्य-सूत्र उसकी सात पीढ़ियों तक को ज्ञात नहीं थें। क्योंकि उस तथाकथित अत्याचार के लिए उसने हिन्दुओं को कठोर दण्ड दिया और मुसलमानों को एक लाख बलोत्रा सिक्कों की भारी धनराशि देकर उनकी गिरी हुई मस्जिदों की मीनारें पुनः बनवा दीं।

राजा जयसिंह ने पुनरुद्धारित सोमनाथ की पैदल यात्रा की। वह महान् शिवभक्त था। हिन्दू धर्म पर उसकी अत्यधिक आस्था थी। सम्भवतः इसी कारण मुसलमानों के समान शत्रुओं को उसने अपने राज्य से निकाल बाहर नहीं किया। सोमनाथ सहित अनेक हिन्दू मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट करने वाले उन म्लेच्छों को हिन्दू नहीं बनाया। अपितु अपने राज्य की परधर्मसहिष्णुता और उदारता प्रदर्शित करने के लिए हिन्दुओं के खर्चे से मुसलमानों की गिरी हुई मस्जिदें पुनः बनवाकर उन्हें राज्य का संरक्षण प्रदान किया। इसके विपरीत महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी आदि तत्कालीन सुल्तानों के समय दिल्ली से लेकर मालवा तक के उनके राज्य में कोई भी हिन्दू अपने मन्दिरों के विध्वंस के सम्बन्ध में एक अक्षर उच्चारित करने का साहस नहीं कर सकता था। उसकी चर्चा करना उस राज्य में भयंकर अपराध माना जाता था और उसके इस अपराध के लिए उसका उच्चारण करने वाले को ही नहीं तो उस क्षेत्र के समस्त हिन्दुओं को गुलाम बनाकर मध्य एशिया के काबुल-कंधार आदि स्थानों में ले जाकर बेंच दिया जाता था। इस प्रकार के विधर्मी मुसलमानों की बड़ी-बड़ी बस्तियों को हिन्दू राजा अपनी परधर्मसहिष्णुता केकारण बड़े ही आदर और सम्मान के साथ रहने देते थे। तत्कालीन इतिहास के सहस्रावधि प्रसंग इस बात के साक्षी हैं कि यहाँ शरणार्थी बनकर निवास करने वाले यही मुसलमान किसी बाह्य मुस्लिम शक्ति के द्वारा हिन्दुस्थान पर आक्रमण करने पर विद्रोही बन जाते थे। वे उस राजा को समाप्त करने के लिए जी तोड़ कोशिश करते थे। यह सब बातें अपनी आँखों से भलीभाँति देखने के पश्चात् भी हिन्दू राजा देश, काल, परिस्थिति का विचार ना कर परधर्मसहिष्णुता, उदारता, पक्षनिरपेक्षता को सद्गुण मान बैठे और उक्त सद्गुणों के कारण ही वे हिन्दू राजागण संकटावस्था में फँसकर डूब मरे। इसी का नाम है 'सद्गुण विकृति।'

लाखों हिन्दू स्त्रियों का अपहरण एवं भ्रष्टीकरण

मुसलमानों के धार्मिक आक्रमणों के भयंकर संकटों का एक ओर उपांग हैं। वह हैं मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्रियों का अपहरण करके उन्हें मुसलमान बना कर हिन्दुओं के संख्या बल को क्षीण करना, इस कारण मुसलमानों की संख्या वृद्धिगत होती गई। उनकी यह राक्षसी श्रद्धा थी कि यह तो इस्लाम की धर्माज्ञा हैं। उनकी इस कामविकार को तृप्त करने वाली अन्धश्रद्धा के कारण उनकी जनसंख्या जिस तीव्र गति से बढ़ने लगी उसी तेजी से हिन्दुओं का जनबल कम होता गया । भीरु और सभ्यपन की व्यर्थ की परिकल्पना के कारण इस बात की स्पष्ट विवेचना करने से घबराना, आपरेशन के भय से डाक्टर को सही रोग न बता कर किसी साधारण रोग की दवा खाकर आत्म-प्रवन्चना करने के समान होगा। सैकड़ों वर्ष तक हिन्दू स्त्रियों का सतत् अपहरण किये जाने वाली घटनाओं को केवल धर्मान्धता कहकर घृणा व्यक्त करने अथवा महत्त्वहीन कहकर दुर्लक्ष्य करने से उनका महत्त्व कम नहीं किया जा सकता। यह तुच्छ बात नहीं थी। यह एक सुनियोजित और भयंकर कृत्य हैं। उस धार्मिक पागलपन में भी एक सूत्र था। मुसलमानों की धर्मान्धता और भयंकरता को दुःसाध्य व्याधि से ग्रस्त हो गया; क्योंकि मुसलमानों का वह धार्मिक पागलपन वास्तव में पागलपन नहीं था; अपितु एक अटल सृष्टिक्रम का अनुसरण कर अराष्ट्रीय संख्याबल बढ़ाने के लिए अपनाई गई एक पद्धति थी।

उपर्युक्त सृष्टिक्रम मनुष्यों ने पशु समुदाय की देखा-देखी अपनाया। गायों के झुण्ड में यदि साँडों की संख्या गउओं से अधिक रही तो उस झुण्ड की संख्या तेजी से नहीं बढ़ेगी। लेकिन जिस झुंड में गायों की संख्या साँड़ों से बहुत अधिक होगी उसकी संख्या पीढ़ी-दर-पीढ़ी तीव्रता के साथ बढ़ेती जायेगी। पशु के समान ही एक प्राणी होने के कारण मनुष्यों के समुदाय में भी अन्यान्त बातों की समानता होने पर वही सृष्टिक्रम **लागू ोच-पाँच** के हिसाब से वितरित कर दिया जाता था। उन अफ्रीकी दासियों की सन्तानें मुस्लिम वातावरण में पलने और जन्मना मुसलमानवंशीय समझी जाने के कारण कट्टर मुसलमान बनती गयीं। इस पद्धति से उत्तरी अफ्रीका में तीव्र गति से मुसलमानों की जनसंख्या बढ़ाने वाले सेनापतियों को 'गाजी' की उपाधि से विभूषित किया जाता था। इससे पराजित 'काफिरो' की स्त्रियों पर जड़ सम्पत्ति के समान विजयीं मुसलमानों का सामान्य रुप से अधिकार हो जाता था। धीरे-धीरे यह मुस्लिम धर्म का एक 'शासन सम्मत' सिद्धान्त ही बन गया।

सीताहरण के पश्चात् जब प्रभु रामचन्द्र ने रावण पर चढ़ाई की तो उस समय रावण के शुभचिन्तकों ने उसे कोसते हुए कहा कि 'तेरे ही परस्त्रीहरण के अन्याय के फलस्वरुप 'राक्षस राज्य' पर यह युद्ध संकट आया हैं। इसलिए इस अधर्म को त्याग कर तू सीता को ससम्मान रामचन्द्र के पास पहुँचा दे।" यह सुनते ही रावण की क्रोधाग्नि धधक उठी। वह बोला-- "क्या कहा? क्या दूसरे की स्त्री का अपहरण और उसके साथ बलात्कार करना अधर्म हैं? अरे -

'राक्षसानाम् परोधर्मः परदाराविधर्षणम्'

"दूसरों की स्त्रियों का अपहरण कर उनके साथ बलात्कार करना तो हम राक्षसों का धर्म हैं- 'परोधर्मः' अर्थात् श्रेष्ठ धर्म हैं।"

इसी रावणी निर्लज्जता और धर्मान्धता के प्रतीक तत्कालीन मुस्लिम आक्रमणकारी हिन्दू स्त्रियों का अपहरण करके उनको मुसलमान बनाकर, जड़ वस्तु के समान उन्हें भी लूट का माल समझते हुए सामान्य सिपाहियों से लेकर सुल्तान तक आपस में बाँट लिया करते थे। इसे वे अपने इस्लाम धर्म का पवित्र कर्त्तव्य मानते थे। इस्लाम की संख्या बढ़ाने के लिए इस कार्य की अतीव महत्ता थी।

मुस्लिम राजसत्ता के अधीन आने वाले हिन्दू प्रदेशों के नवाब, निजाम या सुल्तान ही नहीं तो गाँव-गाँव के फटीचर मुसलमान तक उस क्षेत्र के राज-घराने तक की कन्याओं की 'जजिया कर' की तरह माँग किया करते थे। कभी-कभी विवाहिता ललनाओं की भी माँग की जाती थी। उन्हें न देने पर उनका अपहरण कर लिया करते थे और उन हिन्दुओं से 'अपहरण कर' के रुप में भारी धनराशि वसूली जाती थी।

यद्यपि अरबों ने उस कालखड पर सिन्धु के आक्रमण के समान दूसरा आक्रमण नहीं किया तथापि अन्यान्य मुस्लिम आक्रामको की सेनाओं में सम्मिलित होकर उनकी टोलियाँ भारत में आती रहती थीं। मुसलमानों द्वारा धर्म भ्रष्ट किये गये ईरानी, तूरानी, अफगान, तुर्क, मुगल आदि एशिया के इन राक्षसों की जातियाँ अरबों के समान ही हिन्दुस्थान पर धावा बोलने लगीं। मुसलमानों की इन सहस्रावधि टोलियों में स्त्रियों और पुरुषों की संख्या समान नहीं थी। परंतु भारत पर सतत् होने वाले आक्रमणों में आने वाले सुल्तानों और सिपाहियों से लेकर सामान्य-व्यक्ति तक के सहस्रावधि मुसलमानों ने जिन सहस्रों हिन्दू स्त्रियों को अपहरण अथवा लूट में प्राप्त किया, उन्हीं से विवाह करके अथवा उन्हें अपनी दासी बनाकर यहीं अपना डेरा जमा लिया। मुसलमान बादशाहों, नवाबों अथवा सुल्तानों के 'जनानखानों' में राजघराने से लेकर रखैल तक की जो सैकड़ों हिन्दू स्त्रियाँ कैद करके रखी जाती थीं, वे इसके अतिरिक्त थीं। उनकी क्या चर्चा करें? परन्तु गाँव-गाँव में रहने वाले एक-एक मुसलमान के पास तीन-तीन, चार-चार धर्मभ्रष्ट हिन्दू स्त्रियाँ रहती थीं। इस प्रकार आक्रामक मुस्लिम समाज में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिका हो गई। इस कारण और बहुपत्नी प्रथा के कारण भी बाहर से आये इन मुसलमानों की जनसंख्या पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती ही गई। वह लाखों से बढ़कर करोड़ों तक जा पहुँची।

यह स्मरणीय हैं कि सुल्तान गियासुद्दीन तुगलक, सुल्तान फीरोजशाह तुगलक और सुल्तान सिकन्दर लोदी सरीखे अन्य अनेक हिन्दूद्वेषी और राक्षसी राज्यकर्त्ता इन्हीं धर्मभ्रष्ट हिन्दू स्त्रियों के पेट से पैदा हुए थे।

हिन्दू स्त्रियों पर किये गये अत्याचार एवं मुस्लिम

हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के सैकड़ों साल के उस परम्परागत कालखंड में मुसलमानों ने जिन लक्षावधि हिन्दू स्त्रियों को बलात् धर्मभ्रष्ट किया उनको घोर कष्ट देने के कार्य में मुसलमानों का स्त्री समाज अत्यन्त ही क्रूरतापूर्वक जी खोलकर भाग लेता था। उनका आवेश पुरुषों से कम नहीं होता था। वैयक्तिक की बात यदि छोड़ दें सामुदायिक दृष्टि से भी यह उल्लेख (Statement) पूर्णरुपेण सत्य हैं। आज तक किसी भी इतिहासकार ने उस समय के मुस्लिम स्त्री समाज की इस राक्षसी क्रूरता का निर्भयतापूर्वक वर्णन नहीं किया। अतः हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता हैं कि हम इसका विशेष रूप से उल्लेख करें।

उस काल की मुस्लिम स्त्रियों को यह राक्षसी शिक्षा दी जाती थी कि हिन्दू स्त्रियाँ जन्मजात दासी होती हैं। उन्हें मुसलमान धर्म में खीचनें के कार्य में सम्पूर्ण शक्ति लगाकर सहायता देना धार्मिक कर्त्तव्य हैं। बेगमों से लेकर भिखारिणी मुस्लिम महिलाओं तक कोई भी ऐसी महिला नहीं थी जो मुसलमान पुरूषों द्वारा हिन्दू स्त्रियों पर किये जाने वाले अत्याचारों का निषेध अथवा विरोध करती। उलटे वे पुरूषों को बलात्कार करने के लिए उत्तेजित किया करती थीं। वे उन्हें गौरव प्रदान करके उनका सम्मान करती थीं। अपनी शक्ति के अनुसार वे स्वयं भी हिन्दू स्त्रियों को त्रास देने में कोई कोर-कसर नहीं रखती थीं। मुस्लिम सुल्तानों, सिपाहियों, मुल्लों मौलवियों अथवा ग्रम-ग्रम के मुस्लिम गुण्डों के हाथों में फँसी हिन्दू स्त्रियों को वे अपने महलों के 'जनानखानों' अथवा गाँव की झोपड़ियों में कैद करके रखती थीं। उन्हें मार-पीट

कर मुस्लिम समाज में रोक रखने, मुसलमान बनाने, दासी का कार्य कराने और मुसलमान पुरूषों के हाथों में सौंपने के दुष्ट और क्रूर कार्य में वे बड़े ही आवेश के साथ भाग लेती थीं। केवल हिन्दू-मुस्लिम संघर्षो की अशांत एवं अस्थिर अवस्था में ही नहीं तो शांतापूर्ण स्थिति में हिन्दू राज्यों में निवास करते हुए भी देहातों की मुस्लिम स्त्रियाँ तक अपने पड़ोस की हिन्दू लड़कियों को भुलावा देकर अथवा उनका अपहपण कराकर या तो अपने घरों में छिपाकर रखती थीं अथवा गाँव की मस्जिद के मुस्लिम अड्डों पर पहुँचा देती थीं। सम्पूर्ण हिन्दू समाज में फैला हुआ मुस्लिम स्त्री समाज इस कार्य को अपने इस्लाम धर्म का चिरस्थाई आवश्यक कर्त्तव्य मानता था।

शत्रुओं की महिलाओं के प्रति हिंदुओं का सौजन्य

उन मुस्लिम महिलाओं को इस बात का तनिक भी भय नहीं था कि इस जघन्य क्रूर कर्म के लिए हिन्दू उन्हें दण्डित करेगा। विजय प्राप्त करने के पश्चात् हिन्दू स्त्रियों को भ्रष्ट करने वाली मुस्लिम स्त्रियाँ मुसलमानों द्वारा सम्मानित की जाती थीं। लेकिन ऐसे अनेक प्रसंग आये जब हिन्दुओं ने विजयी होकर हिन्दू राज्य की स्थापना की। उस समय यदि उन्होंनें बहुत क्रूरता दिखाई तो केवल मुसलमान पुरूषों को त्रास दिया। युद्ध में मुसलमान पुरूष ही मारे जाते थे। मुस्लिम स्त्रियाँ आश्वस्त रहती थीं कि विजयी हिन्दुओं के सेनापति सिपाही अथवा सामान्य नागरिक तक उनका बाल भी बांका न होने देंगे। क्योंकि हिन्दुओं की यह मान्यता हैं कि स्त्रियाँ अवध्य हैं चाहे वे अत्याचारिणी हों अथवा शत्रुपक्ष की। अतः युद्ध में जीती जाने पर भी मुस्लिम राजघराने की स्त्रियों और रखैलों को विजेता हिन्दू ससम्मान मुसलमानों के यहाँ वापस भेज देते थे। इतिहास में इस प्रकार के अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं, यह हिन्दू समाज जिनका बड़े गर्व के साथ बखान करता है। उदाहरण के लिए यहाँ एक-दो प्रसंग प्रस्तुत कर रहा हूँ।

शत्रु की स्त्रियों के प्रति सौजन्य और आदर राष्ट्रघाती एवं कुपात्र पर दिखाई गई उदारता की हजारों घटनाओं में से केवल दो का यहाँ उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा कल्याण के सूबेदार की वधू को सालंकृत उसके पति के पास वापस पहुँचाने और चिमाजी अप्पा द्वारा पुर्तगीज किला विजित करने के पश्चात् उनकी स्त्रियों को ससम्मान वापस भेजने की उपर्युक्त दोनों घटनाओं का वर्णन आज के हिन्दू बड़े गर्व के साथ करते हैं। परन्तु क्या यह आश्चर्य की बात नही हैं? शिवाजी महाराज अथवा चिमाजी अप्पा को खिलजी आदि मुसलमान सुल्तानों द्वारा दाहिर की राजकन्याओं, कर्णावती के राजा राजकुमारियों पर किये गये बलात्कार और लाखों हिन्दू स्त्रियों की अप्रतिष्ठा की याद नहीं आई?

उन अप्रतिष्ठित हिन्दू राज महिलाओं और बलात्कारित लाखों हिन्दू ललनाओं के करूण चीत्कार और कलप-कलप कर रोने की आवाज से उस समय भी हिन्दुस्थान का सम्पूर्ण वायुमण्डल सूक्ष्म ध्वनि के साथ सतत प्रकंपित हो रहा था। उनके चीत्कारों की प्रतिध्वनि शिवाजी और चिमाजी के कानों में क्यों नहीं पड़ी? वे बलात्कार से पीड़ित लाखों स्त्रियाँ कह रही होंगी कि हे शिवाजी राजा! हे चिमाजी अप्पा!! हमारे ऊपर मुस्लिम सरदारों और सुल्तानों द्वारा किये गये बलात्कारो और अत्याचारों को कदापि ना भूलना। आप कृपा करके मुसलमानों के मन में ऐसी दहशत बैठा दें कि हिन्दुओं की विजय होने पर उनकी स्त्रियों के साथ भी वैसा ही अप्रतिष्ठजनक व्यवहार किया जायेगा, जैसा कि उन्होंने हमारे साथ किया हैं यदि उन पर इस प्रकार की दहशत बैठा दी जायेगी तो भविष्य में विजेता मुसलमान हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार करने की हिकम्मत नहीं करेंगे।" लेकिन 'महिलाओं का आदर' नामक 'सद्गुण विकृति' के वशीभूत होकर शिवाजी महाराज अथवा चिम्माजी अप्पा मुस्लिम स्त्रियों के साथ वैसा व्यवहार न कर सके।

उस काल के 'परस्त्री मातृवत' के धर्मघातक 'धर्मसूत्र' के कारण मुस्लिम स्त्रियों द्वारा लाखों हिन्दू स्त्रियों को त्रस्त किये जाने के बाद भी उन्हें दण्ड नहीं दिया जा सका। हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम स्त्रियों के 'सतीत्व संरक्षण' के कार्य ने इस सम्बन्ध में एक प्रभावी ढाल का कार्य किया।

मुसलमान स्त्रियों को हिन्दू बनाकर अपने घर में रखना हिन्दुओं के लिए पाप-कर्म था। हिन्दुओं के मन में यह मूर्खतापूर्ण धारण घर कर गई थी कि मुस्लिम स्त्रियों से सम्बन्ध करके वे भी मुसलमान हो जायेंगे। इस कारण हिन्दू राज्यों की भी मुस्लिम स्त्रियों को इस बात का रंचमात्र भी भय नहीं था कि कोई हिन्दू उनका अपहरण कर लेगा अथवा बलात्कारपूर्वक हिन्दू बना लेगा। इसप्रकार की शायद ही कभी कोई अपवादात्मक घटना घटी हो।

इस प्रकार सैकड़ों वर्षों तक अनवरत रूप से हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार एवं धर्मभ्रष्ट करने के अधम अपराध करने वाली मुथ्सलम स्त्रियों का हिन्दू स्त्रियों को बलपूर्वक धर्मभ्रष्ट करने का कार्य सैकड़ों वर्ष तक निर्बाध रूप से चलता रहा।

मुस्लिम आक्रमणों के प्रारम्भिक काल से ही मुस्लिम स्त्रियों द्वारा हिन्दू स्त्रियों की घोर दुर्दशा की जाती रही हैं। लेकिन समरांगण में विजय प्राप्त करने के पश्चात् यदि हिन्दू लोग, विजय के उस अल्पकाल में ही क्यों न हो, मुस्लिम स्त्रियों को कठोरतापूर्वक दण्डित करते जाते अथवा उनकी भी वैसी दुर्दशा करते जैसी मुस्लिम विजेताओं और स्त्रियों द्वारा हिन्दू महिलाओं की की जाती थी, और समयानुसार मुस्लिम स्त्रियों को हिन्दू बनाकर अपने-अपने घरों मे आत्मसात् करते जाते तों भविष्य में जब कभी मुसलमानों की विजय होती तो हिन्दुओं के इस प्रतिकारात्मक व्यवहार के कारण उन्हें हिन्दू स्त्रियों पर अत्याचार करने मे भय लगता। मुस्लिम स्त्रियों का कलेजा दहल जाता। भय के मारे काँपती हुई वे कहती कि "यदि हम आज हिन्दू स्त्रियों को धर्मभ्रष्ट करके, उन्हें त्रास देकर दासी बनायेंगी तो कल हिंदुओं द्वारा गाँव-गाँव में यही दुर्दशा हमारी बहू-बेटियों की भी की जाएगी। फिर हमें 'हिन्दू स्त्री पीड़न' का भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में 'स्त्रीत्व की ढाल भी हमारी रक्षा न कर सकेगी।' मुस्लिम आक्रमणों की प्रथम दो-तीन शताब्दियों में ही यदि मुसलमान स्त्री समाज पर इस प्रकार का आतंक छा जाता तो हमारी लक्षाविध हिन्दू माताओं, बहिनों और कन्याओं पर मुस्लिम स्त्री समाज ने सैकड़ों वर्ष तक जो अत्याचार किया, उसे दुर्दशा झेलनी पड़ी वह कदापि न भोगनी पड़ती। हमारी ही भूमि की ललनाओं के गर्भ से उत्पन्न होने वाली राष्ट्रीय संतति की संख्या कम न होती। इसका परिणाम यह होता कि उनका संख्याबल अति शीघ्र ही समाप्त हो जाता।

इस अध्याय के प्रारम्भ में ही इस बात का समाज-शास्त्रानुसार स्पष्टीकरण किया जा चुका हैं। परन्तु 'शत्रु स्त्री आदर' के भ्रमपूर्ण विचार और पात्रापात्र विवेकशून्य व्यवहार के कारण विवश होकर तत्कालीन हिन्दुओं ने अनेक बार अपने हाथों में आई हुई लाखों स्त्रियों को उनके घोर अत्याचार के बदले में उन्हें वैसी ही सजा नहीं दी।

'शत्रु स्त्री आदर' के कारण हिन्दुओं की अधिकाधिक दुर्दशा

यह प्रश्न उठना स्वभाविक हैं कि क्या देश-काल-पात्र का ध्यान न रखकर शत्रु स्त्री का विवेकशून्य होकर सम्मान करने की इस हिन्दू प्रवृत्ति का मुसलमानों पर कोई अनुकूल परिणाम हुआ? हिन्दुओं की 'धार्मिक उदारता' के कारण क्या मुसलमानों का 'पर-स्त्री पीड़न' का कार्य रुक गया? जब सहस्रों मुस्लिम स्त्रियों को हिन्दुओं ने उनके घरों में ससम्मान वापस भेज दिया तो क्या उन्होंने इस बात का कोई उपकार माना? कदापि नहीं! कभी नहीं! इसके विपरीत अनुभव यह हैं कि जब-जब हिन्दुओं ने अपनी 'स्त्री आदर' सम्बन्धी उदारता दिखाई तब-तब मुसलमानों ने वही अत्याचार करके बार-बार उनका मखौल उड़ाया। "यदि स्त्रियों की इज्जत-आबरू की कदर करना हिन्दू अपने लिए बड़े गौरव की बात मानते थे तो

इन गुणों पर प्रथम अधिकार उनकी माँ-बहिनों के साथ सैकड़ों वर्षों से सहस्रों बार उनकी आँखों के सामने बलात्कार करते आ रहे हैं तो उन्होंने उन स्त्रियों को हमारे हाथों से छीन लेने का साहस क्यों नहीं दिखाया? अपनी माँ-बहिनों की रक्षा कर पाने में असमर्थ, नामर्द और कायर हिन्दू मुस्लिम स्त्रियों की विऊबना कर ही नहीं सकते। इस बात में कोई सत्यता नहीं हैं कि 'परस्त्री' होने के कारण वे मुस्लिम स्त्रियों का स्पर्शनहीं करते। उन हिन्दुओं से कह दों कि यदि उनमें साहस हो तो अपने हिन्दू राज्य में रहने वाली मुस्लिम स्त्रियों की ओर जरा तिरछी नजर करके देख तो लें। मुसलमान उनकी उन आँखों को निकालकर बाहर फेंक देगा। भय के कारण ही ये नामर्द हिन्दू हमारी स्त्रियों को छेड़ने का साहस नहीं करते। इसमे उनके 'परस्त्री सम्मान' के गुण का कोई भी हाथ नहीं हैं।"

इस प्रकार हिन्दुओं के इस गुण का गलत अर्थ लगाकर मुसलमान दिनों दिन ढीठ होते गये। लाखों की संख्या में हिन्दू स्त्रियों का अपहरण किया। हिन्दुओं द्वारा प्रबल प्रतिकार न होने के कारण हिन्दू स्त्रियों पर घृणित अत्याचार करने की उनकी प्रवृत्ति अधिकाधिक आवेशपूर्ण एवं बलवती होती गई।

इस सम्बन्ध में हमारे पूर्वजों का उदाहरण

चाहे वह नाग हो या नागिन, जो काटने दौड़े, उसे कुचलना ही चाहिए। मुस्लिम स्त्रियों के अत्याचारों के कारण ही हिन्दू स्त्रिया धर्मभ्रष्ट हुई। उनका 'स्त्रीत्व' उनके कारण ही नष्ट हुआ। ऐसी अवस्था में आततायी मुसलमान स्त्रियों का स्त्री होने के कारण क्षमा प्राप्त करने का अधिकार यहीं समाप्त हो जाता था। अपने इस अत्याचार के लिए वे कठोर दण्ड की अधिकारिणी थीं। इसी कारण जब ऋषियों का यज्ञ भंग करने वाली ताड़का अपने राक्षस समाज के साथ प्रभु रामचन्द्र की ओर बढ़ी तो उन्होंने उसे वहीं मार गिराया। सीता जी को कोमल ककड़ी समझकर खा जाने के लिए जब राक्षसी शूर्पणखा दौड़ी तो लक्ष्मण जी ने नाक-कान काटकर उसे वापस भेज दिया। उन्होंने 'परस्त्री' होने के कारण उसका सम्मान नहीं किया। जब नरकासुर आर्यों की सहस्रों स्त्रियों का अपहरण करके उन्हें अपने असुरराज्य (वर्तमाान असीरिया) में ले गया तो यह देखते ही भगवान श्रीकृष्ण ने उस पर तत्काल आक्रमण करके उसे मार डाला। यह नहीं तो इस सामाजिक और राजनीतिक बदले से ही सन्तुष्ट न होकर उन्होंने नरकासुर के बंदीगृह की बंदिनी आर्य ललनाओं को संकट मुक्त कराकर उन्हें अपने राज्य में पुनः लाकर सामाजिक बदला भी लिया। असुरों के हाथों में नहीं सौंप दी गई। इस पौरुषशून्य एवं अविवेकी विचारधारा के वशीभूत हो कृष्ण की सेना उन्हें असुरों के यहाँ छोड़कर वापस नहीं आई। परन्तु इसके विपरीत उन सहस्रों स्त्रियों को पुनः वापस लाकर समाज-जीवन में उन्हें ससम्मान समरस बना दिया। उनके संरक्षण एवं पालन-पोषण का भार भूपति श्रीकृष्ण **ने अपने राष्ट्र का स्**त्री-संख्याबल कभी क्षीण नहीं होने दिया। हमारे पुराणकारों ने श्रीकृष्ण के इस सुकृत्य का लाक्षणिक वर्णन करते हुए लिखा हैं कि उन सहस्रों के साथ विवाह करके उन्होंने अपने भूपतित्व के श्रेष्ठ कर्त्तव्य का पालन किया।

उनर्शुक्त पौराणिक काल के पश्चात् भी हमारें वीर विजेता यवन, शक, हूण, आदि परकीय राजाओं अथवा सेनापतियों के पराजित हो जाने पर उनकी कन्याओं के साथा हठपूर्वक खुल्लम-खुल्ला विवाह कर लिया करते थें। यह परम्परा सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ये लेकर गुप्त सम्राटों तक अव्याहत रूप से चलती रही। शालिवाहन राजा भी विजित शक राजाओं की कन्याओं के साथ विवाह कर लिया करते थें। केवल राजा ही नहीं तत्कालीन बड़े-बड़े सामन्तों से लेकर सामान्य नागरिक तक सभी लोग यवन, हूण, शक आदि की स्त्रियों से बेखटके शादी किया करते थे। कारण, उस समय समाज तक को आत्मसात् करने की पाचन शक्ति पौरुष और पराक्रम विद्यमान था।

शुद्धि बन्दी का दुष्परिणाम

रोटीबन्दी, केटीबन्दी आदि आचरण हिन्दू जाति के लिए अहितकार होने के बाद भी अपनी जाति और धर्म को शुद्ध बनायें रखने के विचार से हिन्दू समाज स्वधर्म एवं स्वकर्त्तव्य समझकर उस समय उसका पालन करता था। उसी प्रकार अपनी जाति की शुद्धता के लिए ही 'शुद्धिबन्दी' और उससे उत्पन्न 'सिन्धुबन्दी' नामक इन दो आचरणों का भी यह हिन्दू समाज स्वेच्छाया, स्वधर्म समझकर कट्टरतापूर्वक पालन करने लगा था। हिन्दू समाज की पीढ़ी-दर-पीढ़ी के रक्त में यह भावना भिंदती चली गई कि जो हिन्दू एक बार बलात् मुसलमान बन गया केवल वही नहीं तो उसके वंशज तक हिंदू धर्म में वापस नहीं आ सकते। उनके इस भ्रष्टता के पाप का कोई प्रायश्चित नहीं हैं। यही अपने धर्म की आज्ञा हैं। एकाध अपवाद छोड़कर भंगी से लगाकर ब्राह्मण तक सभी जातियों, राजा से लेकर रंक तक के सभी वर्गों, शंकराचार्य से मूर्ख तक की सभी श्रेणियों, प्रबुद्ध से लगाकर निर्बुद्ध तथा कश्मीर से कन्याकुमारी तक के सभी हिन्दू इस शुद्धिबंदी के धर्माचरण पर एकमत हो गए थे।

मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म को भ्रष्ट किये जाने के भय से उसकी रक्षा करने के लिए सहस्रों हिन्दू स्त्रियों ने जौहर की ज्वालाओं को सतत धधकाये रखा। परधर्मी उनका शरीर भ्रष्ट न कर सकें इसलिए लाखों हिन्दू स्त्रियों एवं पुरूषों ने नदी, तालाब एवं कुओं में कूदकर जलसमाधि ले ली। अपने नन्हें-मुन्ने दुधमुँहें बालको को छाती से लगाकर चिताओं की ज्वालाओं का वरण कर लिया। मुसलमानों के हाथों में पड़ने से पूर्व अन्य लाखों हिन्दुओं ने इसी प्रकार विभिन्न मार्गों से अपना प्राणन्त कर लिया अथवा मुसलमानों के चंगुल में पड़ने पर भी 'हम मुसलमान नहीं बनेंगे' की वीर गर्जना करके छत्रपति सम्भाजी, सिख गुरु तेगबहादुर व अनेक सिख बंधु, धर्मवीर बंदा वैरागी आदि के समान दुःसह यातनाओं को सहर्ष स्वीकार करके अपने मांस के लोथड़े नुचवाकर भी मरणपर्यन्त झुके नहीं। उन समस्त अपूर्व बलिदानियों का क्या हम कभी भूल सकेंगे? मुसलमानों के राक्षसी आक्रमणों के फलस्वरूप अपने ऊपर होने वाले अगणित अत्याचारों को हिन्दुओं ने जिस कट्टरता के साथ अपने धर्म पर बलिदान होने वाले बलिदानी धर्मवीर शायद ही संसार के किसी देश में हुए हों (फिर वे बलिदान जातिभेद, शुद्धिबंदी और सद्गुण विकृति, आदि विकृत धारणओं के कारण ही क्यों न हुए हों?) मुसलमानों का प्रतिरोध और हिन्दू धर्म रक्षार्थ लाखों हिन्दुओं द्वारा किया गया बलिदान व्यर्थ नहीं गया। वे हिन्दू धर्म रक्षा के कवच बन गये। वे देश की भावी पीढ़ियों को धर्म-रक्षार्थ प्राणार्पण करने की सतत् प्रेरणा देते रहे। यह कार्य भी कुछ कम महत्त्व का नहीं था।

शुद्धिबंदी और जाति-बहिष्कार के धर्माचरण से राष्ट्र का चाहे जितना अहित हुआ हो और इस अहित को देखते हुए उसकी चाहे जितनी कटु आलोचना की जाय तों भी हम हिन्दुओं को यह स्मरण रखना चाहिए कि तत्कालीन हिन्दू जगत ने अपनी जाति और धर्म की पवित्रता की रक्षा करने के सदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही उन धर्माचरणों का अवलम्बन किया था। शुद्धिबंदी और जाति-बहिष्कार के भय से हिन्दुओं ने कई पीढ़ियों तक अपरिमित यातनायें भोगीं। लेकिन प्रामाणिक निष्ठा से अपनायें गये अपने स्वधार्मिक स्वरूप का त्याग नहीं किया। मुसलमानों के हाथ की रोटी खाई,पानी पिया, जोर -जबरदस्ती से ही क्यों न हो उनसे शरीर सम्बन्ध हो जाता था। इसमें उसे अपार कष्ट सहन करना पड़ता था। प्राणों से भी बढ़कर प्रिय समझकर पालित-पोषित , बालबच्चों , बहू-बेटी ,साहेदार बन्धु जब शत्रु के अत्याचारों के कारण धर्मभ्रष्ट होकर दूसरे ही दिन लौट कर घर आते तो उनके माँ-बाप और परिवार के अन्यान्य हितचिन्तक अपनी शुद्धता बनाये रखने के लिए अपने घर के द्वार धड़ाधड़ बन्द करके विवश होकर उसे भगा देते थे। हम विचार करे कि ऐसी अवस्था मे उन-माँ-बाप और कुटुम्बियों को कितनी मर्मान्तक पीड़ा होती होगी? मन ममता से कितना विकल हो उठता होगा? क्या एक दूसरे के

वियोग में तड़प-तड़प कर असंख्य भाई बहिन, माँ-बाप पति-पत्नी मर न गये होंगे? इसका उल्लेख हम कहाँतक करें। परन्तु -

त्यजेदेकम् मुलस्यार्थे, ग्रामास्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, धर्मार्थे पृथ्वीं त्यजेत्।।

फिर भी उस समय के कोटि-कोटि हिन्दू अपनी धीरोदात्त बुद्धि से उन शुद्धिबंदी और जाति-बहिष्कार की प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों का पालन करते रहे। इस कारण उन्होंने जो असंख्य यातनाएँ सहीं हमें उनके प्रति कृतज्ञ होना ही चाहिए। इन रूढ़ियों को स्वधर्म मानने की भूल उनकी बुद्धि ने अवश्य की लेकिन उनकी निष्ठा अटूट थी। वे औषधि देने का ही था। वे हिन्दू जाति की जीवनरक्षा ही करना चाहते थे। स्वधर्मरक्षा की श्रेष्ठ भावना से प्रेरित होकर उन्होंने जो दारूण दुःख भोगा उसके लिए कृतज्ञतास्वरूप दो शब्द ही क्यों न हों, लिखे बिना हमसे नहीं रहा जाता।

राष्ट्रघातक घोषणा

मुस्लिम धर्मसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए कभी-कभी जो साधन हिन्दुओ को उपलब्ध होता था उसके माध्यम से, उन्हें चाहिए था कि वे भी मुस्लिम आक्रमणकारियों की तरह ग्रामों और नगरों का हिन्दू-विहीन बनाने के लिए किये गये जघन्य अत्याचारों का, उनका कत्लेआम करके बदला लेते। मुस्लिम बहुल प्रदेशों को मुस्लिमविहीन कर डालते। यदि उपर्युक्त सुझावों के अनुसार हिन्दुओं ने कार्य किया होता तो शुद्धिबंदी का धर्माचरण भी इस कार्य में बाधक न बनाता। क्योंकि ऐसी स्थिति मे मुसलमानें के साथ खान-पान अथवा जाति व्यवहार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। प्रश्न तो केवल मुसलमानों को मिटा देने का था। लेकिन इस कार्य में 'पराधर्मसहिष्णुता' का आत्महन्ता हिन्दू स्वभाव अवश्य ही आड़े आया। 'सर्वधर्म समान हैं', राम-रहीम एक हैं', 'स्वधर्म पालन का सभी को समान अधिकार है', 'परधर्म सहिष्णुता हमारी धर्माज्ञा है', 'यही हमारी हिन्दू जाति का अनन्य गौरव है' आदि की शेखी बघारने की लत हिन्दू समाज मे अति प्राचीन काल से चली आ रही थी। लाखों की संख्या में पराजित और हतबल मुसलमान जब-जब प्रबल पराक्रमी हिन्दू सत्ता की अधीन आये तो उनके साथ 'जैसे का तैसा' का क्रूर व्यवहर करना तो दूर रहा परधर्मी और अल्पसंख्यक होने के कारण हिन्दू लोग उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं होने देते थे। इतना ही नहीं तो उन्हें अपने इस्लाम धर्म के प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता थी। उस समय हिन्दू राज्यों में मुसलमानों को हिन्दू नागरिको से भी अधिक स्वातन्त्रय प्राप्त था। अपनी इस व्यवस्था पर हिन्दुओं को बड़ा गर्व था। वे इस ओर संकेत करके कहा करते थे कि- "देखो! हमारा हिन्दू धर्म कितना परधर्मसहिष्णु हैं। सहिष्णुता हमारे धर्मका भूषण और विशेष सद्गुण हैं।" तत्कालीन हिन्दू राजागण और सम्पूर्ण हिन्दू जगत बड़े गर्व के साथ इसप्रकार की आत्मस्तुति करने मे रत था। यह सब देखते हुए क्या अब भी यह बताने की आवश्यकता हैं कि इस भोले हिन्दू धर्म के परधर्मसहिष्णु अनुयायियों में मुस्लिम धर्मावलम्बियों पर प्रत्याक्रमण करने अथवा मुसलमानों को समूल नष्ट कर डालने की जरा सी भी सामर्थ्य नहीं थी।

परधर्मसहिष्णुता और यह सद्गुण

अगर कोई परधर्मीय हमाारे धर्म के साथ सहिष्णुता का व्यवहार करता हैं। तो उसके साथ सहिष्णुता दिखाना हमारा सद्गुण हो सकता हैं। परन्तु "काफिरों के हिन्दूधर्म का विनाश करना ही हमारा धर्म हैं, यही मेरी प्रतिज्ञा हैं", की गर्वीली घोषणा महमूद गजनवी के पश्चात् सुल्तानों, बादशाहों और शाहों आदि ने गद्दी प्राप्त करते ही की। इस कार्य मे वे अपना

गौरव मानते थे और हिन्दुओं पर इस प्रकार के क्रूर तथा अत्याचार-पूर्ण धार्मिक आक्रमण वे हजार वर्ष तक सतत करते भी रहे। ऐसे राक्षसी धर्मावलम्बियों के साथ 'परधर्मसहिष्णुता' का व्यवहार करना अपने धर्म की गरदन पर छुरी फेरना ही था। यह परधर्म सहिष्णुता नहीं तो अधर्म-सहिष्णुता थी। यह सहिष्णुता नहीं नपुंसकता थी। लेकिन एक हजार वर्ष के कटु अनुभवों के बाद भी यह तथ्य हिन्दुओं की समझ में नहीं आया। वे इस प्रकार अत्याचारी धर्म के साथ भी सहिष्णुता का व्यवहार करते रहे। इसे वे स्वधर्म-हिन्दू जाति का भूषण और उसका एक विशेष गुण समझते रहे। हे हिन्दू जाति! जो-जो दुर्गुण तेरे अधःपतन के कारण बने हैं उनमे से प्रमुख 'दुर्गुण' तेरा यह 'सद्गुण' ही हैं।

अहिंसा, दया, शत्रु की स्त्रियों के सम्मान की रक्षा, शरणागत को अभयदान, क्षमा वीरस्य भूषणम् और परधर्म सहिष्णुता इत्यादि सद्गुण का देश, काल, पात्र का विचार न करके उसका कायरतापूर्ण अंध अवलम्बन हजार वर्षों के उस हिन्दू-मुस्लिम संघर्षो में भयानक पराजय का कारण बन गया। क्योंकि -

पात्रापात्र विवेकशून्य, होता यदि आचरण सद्गुण का ।
तो वही सिद्ध होता, घातक सद्धर्म का ।।

पाँचवाँ अध्याय

अत्याचारों का रामबाण उपचार

प्रत्याचरण ! प्रत्याक्रमण

मुसलमानों ने बार-बार आक्रमण करके किस प्रकार हिन्दू धर्म का उच्छेद किया और लाखों हिन्दू स्त्रियों एवं पुरूषों को भ्रष्ट कर किस प्रकार उनकी संख्याशक्ति को अपर क्षति पहुँचाई तथा हिन्दू समाज अपने जातिभेद, शुद्धिबंदी एवं सद्‌गुण विकृति आदि दुर्बल, धर्मभीरू और राष्ट्रघातक आचरणों की पूर्ति कर परने मे किस मात्रा में असमर्थ रहा आदि बातों का उल्लेख पिछले अध्यायों में किया जा चुका हैं। हिन्दू संख्याबल को कम करने वाली शुद्धिबंदी एवं सद्‌गुण विकृति आदि आत्मघातक रूढ़ियों को ही उस समय क हिन्दू समाज अपना प्रमुख धर्म मानने लगा था। उन आचरणों की पोषक पोथियाँ ही उनके सम्मानित शास्त्र बन गई थी। सदि उस अन्ध परम्परा के काल में उन सब किताबी जंजालों का उच्छेदन करने के लिए यत्र-तत्र विभिन्न प्रमाणेां में धैर्यवान, दूरदर्शी सुधारक, राजनीतिज्ञ, धर्मज्ञ, महान विचारक और कर्मवीर बीच-बीच में न हुए होते, उन्होंने अपने प्रभाव से राष्ट्र के धर्मरक्षा का पराक्रमी मार्ग प्रशस्त न किया होता एवं म्लेच्छ शत्रुओं को उस धर्म-समर में पराजित न करते रहते तो हिन्दू धर्म का संख्याबल और राष्ट्र का विनाश भी अवश्यम्भावी हो जाता।

महर्षि देवल और भाष्यकार मेघतिथि

उस काल की उपलब्ध जानकारी के अनुसार महर्षि देवल और मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि उन विचारवीर और तेजस्वी पुरूषों मे से हैं जिनका तेजस्वी व्यक्तित्व सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता हैं। उनके द्वारा रचित उपलब्ध ग्रन्थों से यह स्पष्ट रुप से पता चलता हैं कि सिन्धु पर मुसलमानों के आक्रमण और उस प्रदेश को जीत कर आगे बढ़ते जाने के कालखण्ड के हिन्दू राष्ट्र के आपत्तिकालीन क्षणों में पराक्रमपूर्ण, **विजजिगीषायुक्त** नये आचरण, नये शास्त्र और नये शस्त्रों की आवश्यकता पूर्ति के लिए ही वे ग्रन्थ लिखे गये थे।

देवल स्मृति के एक श्लोक से यह स्पष्ट रूप से पता चलता हैं कि सिन्धु प्रान्त पर आक्रमण करके मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्री-पुरूषों को मुसलमान बनाने का जो भयंकर कुकृत्य किया जा रहा था उसका प्रतिकार उसे नष्ट करने में उस समय की स्मृतियों के आचार धर्म पूर्णरूप से असमर्थ थे। मुसलमानों द्वारा हिन्दू संख्याबल को महुँचाई गई क्षति की पूर्ति के लिए अनेक आचार धर्म में सुधार कर धार्मिक अत्याचार का धार्मिक अत्याचार द्वारा तेजस्वी एवं प्रबल प्रतिकार करने के विचार से प्रथम बार सिन्धु प्रदेश में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि कर्मशील पुरूषों का संगठन निर्माण किया गया था।

सिन्धु तीरमुपासन्नम्! देवलं मुनिसत्तम्।।

उपर्युक्त चरण से प्रारम्भ होने वाले 'धर्म भ्रष्टीकरण' के अध्याय से यह स्पष्ट रूप से विदित होता हैं कि सिन्धु नदी के तट पर स्थित ऋषि के आश्रम में एकत्रित हिन्दू नेताओं ने देवल ऋषि से प्रश्न किया कि "म्लेच्छों ने अपने शस्त्रबल से जो धर्म विनाश प्रारम्भ किया हैं और जो हिन्दू स्त्री-पुरूष उसके शिकार होकर धर्मभ्रष्ट हो गये हैं क्या उनके लिए प्रायश्चित का कोई मार्ग हैं जिससे वे पुनः हिन्दू बनाये जा सकें?" उस समय इस चर्चा और देवल ऋषि द्वारा अन्तिम रूप से अपनी स्मृति में साधिकार शब्दों में शुद्धिकरण के अनुकूल आचारों का किया गया उल्लेख देवल स्मृति ग्रन्थ के श्लोंकों में प्राप्य हैं। बिल्कुल सनातन माने गये उस समय के हिन्दू संख्याबल की दिनों-दिन होने वाली हानि को देखते हुए इस नये स्मृति ग्रन्थ के प्रेरकों, लेखकों और अनुयायियों ने यह निश्चय किया कि शास्त्रों द्वारा वर्णित आचार आपत्तिकाल में विहित नहीं हो सकता।

प्रतिकूल परिस्थितियों में उनका सामना करने के लिए आपद्धर्म नामक एक प्रगतिशील शस्त्र हमारे धर्मशास्त्रों के शस्त्रागारों में सुरक्षित था। लेकिन इस बात की सदैव आवश्यकता रहती थी कि समय आने पर उस शस्त्र का उपयोग करने वाला नेतृत्व आगे आये। इस हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की आपत्ति बिल्कुल प्रारम्भ में ही यदि सामुदायिक स्वरूप में वह आपद्धर्म में पुनरूजीवित कर लिया जाता तो हिन्दूधर्म ने भारत में मुस्लिमधर्म का उसी तरह पूर्णतः उच्छेद कर डाला होता जिस प्रकार पराक्रमी (अर्थात् शत्रु पर आक्रमण करने वाले पराक्रमी) और दसों दिशाओं को जीतने की (दिग्विजिगीषु) आकांक्षा रखने वाले देवों ने आर्यों ने, राक्षसों का किया था। यद्यपि उतने प्रमाण में और वैसी धार्मिक तेजस्विता हिन्दू समाज की ओर से सामुदायिक रीति से प्रदर्शित नहीं की गई परन्तु फिर भी सिन्धु के महर्षि देवल का काल सन् 800 से 900 का माना जाता हैं।

उस धार्मिक तेजस्विता के कारण शुद्धिबंदी की रूढ़ि और उसके शास्त्र को ठुकराकर उससे प्रायश्चित की युक्ति निकाली गई। देवल स्मृति में यह स्पष्ट आदेश दिया गया हैं कि मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक भ्रष्ट किये गये हिन्दू स्त्री-पुरूष यदि कुछ निश्चित वर्षों के अन्दर प्रायश्चितपूर्वक हिन्दूधर्म में पुनः आने की इच्छा व्यक्त करें तो साधारण रूप से वर्णित उपवासादि के प्रायश्चित कराकर उन्हें हिन्दूधर्म में पुनः सम्मिलिम कर लिया जाय। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रदर्शित इस स्मृति में यह स्पष्ट निर्देश हैं कि मुसलमानों द्वारा बलात्कारपूर्वक भ्रष्ट की गई अथवा मुसलमानों के यहाँ रखैली दासी के रूप में रखी गई स्त्रियों को उनके मासिक ऋतुदर्शन पुनः होते ही उन्हें शुद्ध समझकर पुनः हिन्दू धर्म में समाविष्ट कर लिया जाय और मुसलमानों के पास से छीनकर **दाई गई** गर्भवती हिन्दू स्त्रियों को भी प्रसूति के पश्चात् उनके पेट का वह 'शल्य' निकलते ही हिन्दू लोग उसे वैसा ही शुद्ध मानें जैसा कि अग्नि परीक्षा के बाद निकला हुआ सोना शुद्ध माना जाता हैं।

लेकिन यह आश्चर्य का ही विषय हैकि अपनी जाति का संख्याबल घटने के भय से, भ्रष्ट की गई हिन्दू महिलाओं को पुनः हिन्दू धर्म में प्रविष्ट कराने की उत्कण्ठा रखने वाली देवल स्मृति ने उनके उदर से उत्पन्न शिशुओं को शुद्ध करके हिन्दू धर्म में सम्मिलित करने की व्यवस्था क्यों नहीं की? लेकिन जब हमें बंगाल की इस रूढ़ि का पता चला कि जब किसी कुटुम्ब में बाल विधवा प्रसूति अथवा कौमार्य संकर की बहिष्कार सरीखी कोई घटना घटित होती थी तो उस कुटुम्ब की बदनामी के भय से अथवा हिन्दू जाति को भी उस पाप के सम्पर्क से हानि न उठानी पड़े इस विचार से शास्त्रीजनों ने एक युक्ति निकाली थी कि ऐसी दशा में गाँव की नदी के उस पार रहने वाले मुसलमानों के बाड़े से किसी मुसलमान को

बुलाकर वह शिशु उसे सौंप दिया जाय और उससे यह निवेदन किया जाय कि "अब यह शिशु तुम्हारा हैं, इसको सम्हालो।" मुसलमान बड़े ही आनन्द सेऐसे शिशुओं को अपने घर ले जाते इससे उनका संख्याबल बढ़ने में काफी सहायता मिलती। तब ऐसा लगा कि यह रीति भी 'संकर' के कारण उत्पन्न शिशु मुसलमानों को दे दिया जाय, इस प्रकार धर्माचरण की आज्ञा देने वाले देवल स्मृति जैसी ही किसी स्मृति का अनुसरण करके शुरू हुई होगी। लेकिन उन पापभीरू हिन्दुओं का ध्यान इस ओर नहीं गया कि इससे अपना संख्याबल घटता हैं।

जातिभेद, शुद्धिबंदी अथवा शुद्धिकरण के ढीठ सुधारको द्वारा भी 'संकर के कारण उत्पन्न शिशु म्लेच्छ को दे डालो' का कायर पर्याय रखने का कारण जाति की बीज-शुद्धि बनाये रखना हैं। चाहे कुछ भी हो जाय-जाति भी नष्ट होती हो तो हो जाय पर उसे शुद्ध ही रहना चाहिए। यह विचार हम हिन्दुओ के मन मे घुसा पागलपन हैं। उन हिन्दुओं की समझ में उनके उस धर्माचरण के कारण ही जब हजारों लाखों स्त्रियाँ मुसलमानों के हाथ लगती थीं तो उनका नष्ट होना अवश्यम्भावी हो जाता था। इतना ही नहीं यदि उसी प्रमाण में शुद्धिबन्दी का आचरण होता रहता तो सम्पूर्ण हिन्दू जाति अब तक नष्ट हो चुकी होती।

ध्यान देने योग्य बात यह हैं कि आज देवल स्मृति के जो अंश उपलब्ध हैं उसमे कहीं भी ऐसा निर्देश नहीं मिलता कि जन्मजात मुसलमान को भी शुद्ध करके हिन्दू बनाया जा सकता हैं। इसका भी एकमेव कारण यही होगा कि दूसरी जाति वाले को अपनी जाति में मिलाना हिन्दू भयंकर पाप समझते थे। हिन्दुओं की अपनी उपजातियों में भी 'संकरता' न उत्पन्न हो इस दिशा में 'गीता' जैसे शास्त्र-निर्माता भी चिन्तातुर दिखाई देते हैं।

सारांश में हम यह कह सकते हैं कि ऋषि देवल के आश्रम के साहसी सुधारकों ने बलपूर्वक भ्रष्ट किये गये हिन्दू स्त्री-पुरूषों को हिन्दू बनाने की व्यवस्था कुछ सीमा तक की। यही कुछ थोड़ा सा वे सुधार कर सके। परन्तु उस समय मुसलमानों के उग्रतर धार्मिक आक्रमण के प्रतिकार के लिए हर स्थान पर और हर प्रकार के उपयुक्त हिन्दू प्रत्याक्रमण करने का साहसपूर्ण कार्य वहीं दिखाई नहीं देता। यह कार्य न तो स्मृतिकारों ने किया और न समर धुरंधर वीरों ने ही। फिर भी मुस्लिम सत्ता स्थापित हो जाने के पश्चात् की उस विकट परिस्थिति में देवलादि सैकड़ों हिन्दू नेताओं ने जो इतनी धार्मिक क्रान्ति की वह कुछ कम नहीं।

मुसलमानों के धार्मिक आक्रमणों की हिन्दुओं द्वारा सफल रोक

उपर्लिखित देवलादि हिन्दू नेताओं ने मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये स्त्री-पुरूषों को फिर से हिन्दू बनाने की जो धार्मिक विधि प्रारम्भ की, उसमें तत्कालीन हिन्दू समाज ने पूरा-पूरा सहयोग दिया। सहस्रों भ्रष्ट हिन्दू-स्त्री-पुरूषों को हिन्दू धर्म में पुनः सम्मिलित किया गया। इधर जब धार्मिक मोर्चे पर मुसलमानों को पछाड़ा जा रहा था तभी पूर्ववर्णित घटनाओं के अनुसार राजकीय समर में भी मुसलमानों को हिन्दू पीटते जा रहे थे। सिन्ध में मुसलमानों को पराजित कर प्राप्त की जाने वाली विजय और कासिम के आक्रमण के पश्चात् हिन्दुओं द्वारा दो सौ वर्ष तक सिन्ध पर किये गये राज्य की घटनाओं का स्पष्ट वर्णन अथवा आभास आज के इतिहास में ढूँढ़े भी नहीं मिलता। इसलिए यहाँ देवल आदि के पतित परावर्तन आदि धार्मिक तथा राजनीतिक मोर्चों का विशेष रूप से उल्लेख करना पड़ा।

हिन्दुओं की इस धार्मिक एवं राजकीय विजय का यद्यपि अपने इतिहास में बिल्कुल स्पष्ट-सा आधार मिलता हैं किन्तु उससे भी महत्त्वपूर्ण आधार हैं स्वयं शत्रु द्वारा लिखित लेख। प्रमाण के लिए उन्हें यहाँ उद्घृत कर देना ही पर्याप्त होगा। हिन्दुओं द्वारा सिन्ध पर पुनः विजय प्राप्त करते समय मुसलमानों के जो धुर्रे उड़े उससे त्रस्त होकर मुसलमान लेखकों ने मुसलमानों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखा हैं -

"प्रबल हिन्दू काफिरों के भय से हम अरबों के बाल-बच्चे, स्त्री-पुरूष, जंगल-जंगल मारे-मारे भागते फिरते हैं। हमारे द्वारा जीते गयेसिन्धप्रान्त के अधिकांश भागों को पुनः जीतकर वहाँ हिन्दुओं ने अपना राज्य स्थापित कर लिया हैं। हम निराश्रित अरबों के लिए 'अल्लाह फुजाह' नामक किला ही एक मात्र शरण का स्थान बचा हैं। अरबी झण्डे के नीचे हमारे हाथ में केवल यही एक स्थान हैं। केवल राजकीय मोर्चे परही हम अरबो को धूल नहीं चाटनीं पड़ती हैं अपितु राजा दाहिर का कत्ल करने के पश्चात् जिन हजारों हिन्दुओं को सौ वर्ष के परिश्रम से हमने भ्रष्ट करके मुसलमान बनाया था और हिन्दू स्त्रियों को दासी बनाकर मुसलमानों के घर-घर में घुसेड़ रखा था-- उस धार्मिक मोर्चे पर भी हमारी वैसी ही दुर्गति हुई हैं। हिन्दुओं में उत्पन्न क्रान्तिकारी एवं प्रभावी आन्दोलन के कारण इस्लाम द्वारा भ्रष्ट किये गये समस्त स्त्री-पुरूषों ने फिर अपना काफिर हिन्दू धर्म अपना लिया हैं।"

भाष्यकार मेधातिथि

ऋषि देवल का काल सन् 800 से 900 तक माना जाता हैं। उसके आसपास ही अर्थात् 850 से 950 तक के समय में मुसलमानों के दुष्ट सशस्त्र धार्मिक आक्रमण को मार गिराने के लिए वैसी ही सशस्त्र प्रत्याक्रमणकारी क्रांति की जो लहर हिन्दूसमाज में उठी थी, उसे सहारा देने वाले हिन्दुओं का अत्यन्त प्रभावपूर्ण मार्गदर्शन कर अखिल आर्यावर्त को फिर से वर्धिष्णु एवं जगज्जेता साम्राज्यवाद की शिक्षा देने वाले, चाणक्य के समान एक महान् शस्त्रपूजक शास्त्रकार हिन्दुओं के सौभाग्य से उसी समय प्रकट हुए। वे हैं मनुस्मृति के भाष्यकार श्री मेधातिथि। उस नवीं-दसवीं शताब्दी में हिन्दुओं पर चारों ओर से होने वाले आक्रमणों के कारण निराश और मार्ग विहीन समाज में प्राण फूँकने का कार्य इस भाष्यकार ने सम्पन्न किया। हिन्दूसमाज को साहसपूर्वक प्रत्याक्रमण करने का धैर्य प्रदान करते हुए उन्होंने मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व हुए प्रचण्ड पराक्रमी, आर्य साम्राज्यवादी एवं विस्तारवादी चाणक्य के उपदेशों का ज्योतिस्तंभ पुनः प्रस्थापित करने का प्रयास किया। उस समय उनके समान वही एकमेव और सम्भवतः अंतिम स्मृतिकार धर्मपुरूष और लोकनेता थे। उनका हेतु था कि उस समय हुए मुस्लिम आक्रमणों का, पूर्वकाल के समान आर्य साम्राज्य द्वारा राक्षसों के प्रति अपनाई पराक्रमी एवं तेजस्वी रणनीति का अवलम्बन कर प्रत्याक्रमण द्वारा विनाश कर देना और फिर पहिले के समान अपना आर्यावर्तीय साम्राज्य स्थापित करके, आर्यावर्त के बाहर भी दिग्विजय करके, म्लेच्छों का राज्य जीतकर और यदि आवश्यकता पड़े तो सशस्त्र बलपूर्वक वहाँ आर्यधर्म की स्थापना कर उन म्लेच्छों को भी आर्यावर्त के साम्राज्य में समाविष्ट कर लेना। उपर्युक्त ध्येय को वे समाज में स्फुरित एवं जागृत करना चाहते थे। उनकी मनुस्मृति की टीका में आर्यों की वेदकालीन 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' की गर्जना निरन्तर निनादित होती रहती हैं।

उस काल के लगभग एक हजार वर्ष से हिन्दुओं की स्मृतियों के जाति-पांति, दयाधर्म और छुआछूत के श्रुतियुक्तता का बहाना करने वाले निर्बल और राष्ट्रीयदृष्टि-शून्य आचार-विचारों ने हमारे हिन्दू समाज में अव्यवस्था मचा रखी थी। उस अधोगति को रोककर निर्बल तथा बुद्धू बने हिन्दू समाज को एक बार फिर से उसे आर्यावर्त का मूल स्वरूप प्राप्त करा देने की महत्वाकांक्षा रखने वाले उस समय एकमेव भाष्यकार मेधातिथि ही हुए। इसलिए सभी स्मृतियों की मूलाधार मानी जाने वाली 'मनुस्मृति' की ही भाष्य करना उन्होंने उपयुक्त समझा और विशेषकर राजनीतिक संघर्ष में जो कुछ कहा गया हैं उसे चाणक्य के निकष पर परखा गया। उस प्रकार एक हाथ में आर्यावर्तियों के मूल की मनुस्मृति और दूसरे हाथ में चाणक्य का साम्राज्यवादी, दिग्विजयक्षम अर्थशास्त्र लेकर मेधातिथि ने उस समय के निर्बल मूर्खतापूर्ण अहिंसा धर्म के कारण पंगु बने सभी अचार-विचारों को धर्मबाह्य घोषित किया। इस प्रकार की जाति-पांति पागलपन के आचारों को ही नहीं तो

उस समय जाति धर्म बताने वाली स्मृतियों को भी उन्होंने निम्नलिखित निषेध रूपी आघात से निर्माल्यवत् निर्जीव कर दिया –

या वेद बाह्य स्मृतयः, याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्तान् विपरीतार्यान्, वेदविद् न समाचरेत्।।

सिन्धु और पंजाब में उन्हीं एक दो पीढ़ियों में मुसलमानों न हिन्दुओं पर अधिकांश अत्याचार और बलात्कार किये। अपनी किन-किन कमजोरियों के कारण धार्मिक प्रत्याक्रमण के इस मोर्चे पर उनका बदला न लिया जा सका, हिन्दू उसका प्रतिकार न कर सके ; ये सब बातें मेधातिथि के सामने ही घटित हुई थीं। यह सब देखकर उन्हें आर्य पताका पर लिखे 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का ध्यान आया। उन्होंने विचार किया कि किस स्मृति के आधार पर आर्य अपना ध्वज लेकर विजय पर विजय करते चले जाते थे। उसी स्मृति की प्रतिध्वनि पतित, पराजित राष्ट्र के राजगण के लिए फिर से उनके कानों में पहुँचाने के विचार से उन्हें शस्त्रवादी युद्धवादी साम्राज्यवादी धार्मिक आचरणों की आज्ञाएँ मनु महाराज की मूल आज्ञाओं के रूप में अपने तेजस्वी भाष्य के माध्यम से प्रस्तुत की और अन्य सभी धारणाओं को 'वेद बाह्य स्मृतयः' घोषित कर दिया। उनके वे वाक्य उस समय के निस्तेज बने हुए राजाओं के गले न उतर सके, वे उन्हें शोंभा भी नहीं देते थे। क्योंकि वे वचन तो सम्राट चन्द्रगुप्त, सम्राट पुष्यमित्र सरीखे वीरों को शोभा देने वाले शास्त्रवचन थे।

मेधातिथि स्पष्ट कहते हैं कि 'दूसरे के और विशेषकर संभाव्य शत्रु के राज्य पर चढ़ाई करना राज्य शास्त्रानुसार कोई अन्याय नहीं होता। यही नहीं तो राजा का तो कर्त्तव्य ही हैं कि जब शत्रु कमजोर हो, जब हम पर आक्रमण करने की उसमे सामर्थ्य न हो तभी उस म्लेच्छ शत्रु पर आक्रमण करके उसे पीस डालना चाहिए। इस राजनीति में अपने आर्यावर्तीय राज्य का संरक्षण ही मुख्य राज्यधर्म हैं। इसलिए बिना दूरगामी परिणामों का विचार किये हुए जो भाष्यकार यह कहते हैं कि "परकीय राज्यों उसमे भी म्लेच्छ राज्यों द्वारा कोई अपराध न होने तक उन पर आक्रमण नहीं करना चाहिए" इन सब बातों को मेधातिथि ने आत्मघाती, समय नष्ट करने वाली और राज्यधर्म के विरूद्ध घोषित कर दिया। पड़ोसी राजा शत्रु हैं-यही उसका अपराध हैं- अवसर मिलते ही उस पर झपटकर धूल में मिला दो। इतना ही नहीं तो यदि अपना पड़ोसी अनार्य म्लेच्छ राज्य यदि अपने से अधिक शक्तिशाली होता दिखाई दे और उससे कोई प्रत्यक्ष अपराध न हो तो भी आसपास के अन्यान्य निकटर्ती शत्रु-मित्र राष्ट्रों का व्यूह रचकर जब विजय का विश्वास हो जाय, उस अनार्य पड़ोसी राज्य के विरूद्ध स्वयं से ही युद्ध की घोषणा कर देनी चाहिए।

मेधातिथि के भाष्य की पंक्ति-पंक्ति से उनकी यह प्रबल इच्छा प्रगट होती हैं कि उस समय, अर्थात् 9वीं-10वीं शताब्दी में, म्लेच्छों का प्रतिकार करने के लिए उत्तर भारत के तत्कालीन श्रीमान् राजा भोज, राजपूत एवं अन्य राजागण अपनी सारी शक्ति एकत्र कर पुनः पूर्वकालीन राजाओं के समान ही नहीं तो उससे भी बढ़कर तेजस्वी, अजेय और विजिगीषु भारतीय साम्राज्य का निर्माण करें। इसलिए राजा के कर्तव्यों का वर्णन करते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा हैं कि "आर्यावर्त पर म्लेच्छों के चढ़ाई करने से पूर्व ही उन पर आक्रमण कर देना चाहिए। एक बार शत्रु से शत्रु के रूप में टकराव होते ही फिर राजा को दया माया का विचार न करते हुए शत्रु को कुचलकर उसकी चटनी ही बना डालनी चाहिए। परकीय कपटी शत्रु को आवश्यक निमित्त बनाकर उसे कपट से ही मार डालना चाहिए। युद्ध में ढीलापर, भोलापन, सीधापन और बोलचाल की सुसंगति व सभ्यता आदि तथाकथित 'सद्गुण' राष्ट्रनायक दुर्गुण सिद्ध होते हैं इसलिए राजा के हित में यही हैं कि वह उनका शिकार न बने।

मेधातिथि ने इस प्रकार की कठोर राजनीति का समर्थन किया हैं। म्लेच्छों ने हिन्दू राजाओं के भोलेपन का लाभ उठाकर समय-समय पर अनेकों आघात करके हिन्दुओं का जो विनाश किया हैं उस भोलेपन से हिन्दुओं को मुक्ति दिलाने

के लिए देश को एक बार फिर चाणक्य नीति की शिक्षा देने की आवश्यकता थी। मेधातिथि अपने मनुस्मृति के इस भाष्य में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि – "आर्य धर्म ने यह आज्ञा कभी नहीं दी कि आर्य अपने को आर्यावर्त मे ही बन्द करके रखें। इसके विपरीत शास्त्रीय आज्ञाओं का मर्म यह हैं कि यदि बलशाली आर्य राजा आर्यावर्त के बाहर के म्लेच्छ राजाओं पर चढ़ाई करके उन्हें जीत लें और सर्वत्र आर्य धर्म का प्रचार करें तो वे समस्त म्लेच्छ देश भी आर्य देश माने जायें और उन्हें भी आर्यावर्तीय सम्राज्य में समाविष्ट कर लेना चाहिए।"

मेधातिथि के इस भाष्य के अनुसार उस समय हिन्दू राष्ट्र के कुछ हिन्दू राज्य चन्द्रगुप्तकालीन चाणक्य के आदर्श के अनुसार भरतखण्ड की सीमा के बाहर जाकर म्लेच्छ देशों पर अक्षरशः ऐसे ही दिग्विजयी आक्रमण कर रहे थे। उत्तर में तो मुसलमानों के आक्रमणों के कारण सीमावर्ती हिन्दू राज्यों के लिए सीमा पार करके आक्रमण करना सम्भव नहीं था। वे अपनी सीमा-रक्षा में लगे थे। तथापि हिन्दुस्थान पर एक के बाद दूसरा आक्रमण करने के पश्चात् महमूद गजनवी की मृत्यु के बाद, डेढ़ सौ वर्षों तक ही क्यों न हो दक्षिण के हिन्दू राजाओं की स्वतंत्रता और उनकी शक्ति अक्षुण्ण बनी रही। ऊपर दिये गये मेधातिथि के भाष्य के अनुसार दक्षिण के हिन्दूराज्य धार्मिक प्रेरणा से आर्यों की चन्दुगुप्तकालीन विजिगीषु राजनीति का प्रयोग करने में समर्थ थे और इसलिए ही कलिंग, पाण्ड्य, चेर, चोल आदि हिन्दू राजा समुद्र पार करके पश्चिम-दक्षिण और पूर्वी सागरों मे आस-पास स्थित म्लेच्छ राजाओं पर अपनी सामुद्रिक सेना द्वारा अभियान करके उधर चीन और इधर अफ्रीका तक के समुद्री सागर तट दिग्विजय करते जा रहे थें। आश्चर्य की ही बात है कि जिस समय उत्तर में मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी हिन्दुओं की एक के बाद दूसरी राजधानी, क्षेत्र के बाद क्षेत्र और मन्दिर के बाद मन्दिर उजाड़ते हुए हिन्दू राज्य सत्ता को परास्त कर रहे थे, उसी समय दक्षिण में भुवनेश्वर के समान विशाल मन्दिर खड़े किये जा रहे थे और राजेन्द्र चोल के समान हिन्दूसम्राट ब्रह्मदेश, पेगू, अंदमान, निकोबार आदि पूर्वी समुद्र के द्वीप समूहों को अपनी विशात जलवाहिनियों की वीरता से जीतते चले जा रहे थे। तथा उसके बहुत पूर्व से स्थापित जावा से लगाकर हिन्दूचीन (इण्डोचाइना) तक हिन्दू राज्यों से सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे। इधर पश्चिमी समुद्र में स्थित लक्षद्वीप, मालद्वीप, और अन्यात्य द्वीपसमूहों को जीतकर उसने सिंहलद्वीप (लंका) पर भी अपना राज्य स्थापित किया था और उसी समय दक्षिण महासागर में हिन्दुओं का अजेय ध्वज लहराया था।

हिन्दुओं की इन नौसेनाओं ने समुद्र और महासमुद्र लांघकर अनेक देशों को दिग्विजय करके उन्हें आर्य साम्राज्य में समाविष्ट करने का जो कार्य किया उसकी नींव में भाष्यकार मेधातिथि के समान चाणक्य की स्फूर्ति से तेजपुंज बन शास्त्र का प्रज्सलित भाष्य ही कार्य कर रहा था; न कि उसके सौ-दो सौ वर्षों पश्चात् प्रचलित हुए हिन्दुओं का सिन्धुबन्दी शास्त्रों का पंगु भाष्य।

छठवाँ अध्याय

मुसलमानों के धार्मिक आक्रमणों का प्रतिकार

पिछले अध्याय के अन्तिम परिच्छेदों में हमने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया था कि जातिभेद, शुद्धिबंदी तथा सद्‌गुण-विकृति जैसे आत्महत्या दोषों के कारण यह हिन्दू समाज पूर्णरूप से नष्ट क्यों नहीं हो गया? इसका कुफल केवल लाखों हिन्दुओं के भ्रष्टीकरण तक जाकर ही क्यों रूक गया? कारण, हिन्दुस्थान के सीमावर्ती प्रदेशों के मूल निवासियों का धर्म तों मुसलमानों ने पूर्णत्या नष्ट कर दिया था। स्पेन तक-अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर का भू-भाग और हिन्दुस्थान सीमा तक फैले हुए एशिया महाद्वीप के प्रदेशों में जहाँ-जहाँ मुसलमान गये वहाँ के सब प्रदेशों को उन्होंने इस्लाम धर्म में दीक्षित कर डाला। किन्तु भारतवर्ष में उन्हें क्यों पूर्ण सफलता नहीं मिली? यदि मुहम्मद बिन कासिम की पहली चढ़ाई (आठवीं शती) की बात जाने भी दें तो भी ग्यारहवीं शती से-अर्थात् महमूद गजनवी और गोरी के आक्रमणों से लेकर अठारहवीं शताब्दी में पेशवाओं द्वारा मुगलों के धुर्रे उड़ाने तक, लगभग एक सहस्र वर्ष तक मुसलमानों ने हिन्दुओं पर घोर राक्षसी, सशस्त्र और धार्मिक अत्याचार कर, लाखों की संख्या में स्त्री-पुरूषों को भ्रष्ट कर अपना संख्याबल बढ़ाने का प्रयास जारी रखा। इस भ्रष्टीकरण के लिए उस समय इस देश की परिस्थिति भी उनके अनुकूल थी। हिन्दू जाति के इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में जकड़े रहने पर भी मुसलमान सम्पूर्ण हिन्दू समाज को नष्ट करने में सफल क्यों नहीं हुए?

उक्त शंका के निवारण के लिए पहली बात हैं मुसलमानों को राजनीतिक मोर्चे पर हिन्दुओं द्वारा हराया जाना। पहले भीम, राणाप्रताप आदि राजपूत राजाओं ने, फिर विजयनगर के हिन्दू राजा ने सशस्त्र प्रतिकार कर मुसलमानों को राजकीय सत्ता को झकझोर कर अत्यन्त क्षीण और ढीला-ढाला कर डाला। और, अन्त में पेशवा के नेतृत्व में मराठों ने अटक तक हिन्दू विजय-वैजयन्ती फहराकर मुस्लिम सत्ता समाप्त कर दी। इस प्रकार प्रबल राजाश्रय प्राप्त होने के कारण हिन्दू समाज को नष्ट करना असम्भव हो गया। राजनीतिक मोर्चे पर हुई मुसलमानों की इस पराजय का इतिहास सर्वविश्रुत है।।

दूसरी ओर महर्षि देवल-विशेषकर मनुस्मृति के भाष्यकार मुधातिथि द्वारा प्रतिपादित तत्वज्ञान का प्रत्यक्ष आचरण करने वाले और मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों के विरूद्ध सशस्त्र धार्मिक प्रत्याक्रमण और प्रत्यपकार करने वाले वीर और कर्मवीर पुरूष कभी-कभी ही क्यों न हों हिन्दू समाज में सदा उत्पन्न होते रहे। इस प्रकार हिन्दू समाज के पूर्णरूप से नष्ट न होने का यह एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण हैं। इस प्रकार के शताधिक उदाहरणों मे से हम कुछ उदाहरण नीचे उद्‌घृत कर रहे हैं जिनसे पता चलता हैं कि मुसलमानों के धार्मिक आक्रमणों का उसी प्रकार के धार्मिक प्रत्याक्रमणों द्वारा हिन्दुओं ने किस प्रकार प्रतिरोध किया।

(1) मुसलमानों द्वारा विजित सिंध प्रान्त उससे भी परे स्थित मुस्लिम सत्ता के प्रदेशों को जीतकर मेवाड़ के सुप्रसिद्ध राणा बाप्पा रावल ने-जैसा कि राजपूतों के रासो ग्रन्थ में उल्लेख हैं, विजित यवन-राजकुमारी से विवाह किया और उसे अपने अन्तःपुर में अन्य रानियों के साथ ही रखा। इतना ही नहीं तो उस रानी से उत्पन्न बाप्पा रावल की संतानों को राजपूतानी समाज में सूर्यवंशी के रूप में ही सम्मान प्राप्त हुआ था। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य हैं कि उस समय के हिन्दुओं ने मेवाड़ के महाराणा की संतति के सम्बन्ध में उस प्रकार की धार्मिक मूर्खता का परिचय नहीं दिया था, जिस प्रकार पूना के परम प्रतापी बाजीराव की मस्तानी (एक मुस्लिम राजकुमारी) से उत्पन्न सन्तानों को स्वयं बाजीराव की इच्छानुसार हिन्दू धर्म में स्वीकार न कर बलात् मुस्लिम समाज में ढकेल दिया गया था।

(2) जैसलमेर के रावल चेचक ने सुल्तान हैबत खाँ की सोमलदेवी नामक लड़की से विवाह करके उसे अपने यादव कुल में सम्मिलित कर लिया।

(3) मारवाड़ के राव मल्लीनाथ राठौर के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर जगमल ने जब अपने पराक्रम से मालवा के मुस्लिम सुल्तान को हराकर फिर से मालवा जीता तब उसने उस सुल्तान की शिदोली नामक विख्यात सुन्दरी राजकन्या से खुले रूप में विवाह किया और उससे उत्पन्न संतान को भी मारवाड़ के राजपूत जागीरदारों में समानता का स्थान प्राप्त हुआ।

(4) इससे एक कदम आगे जाकर-जैसा कि मुस्लिम आक्रामक सैकड़ों हिन्दू स्त्रियों को भ्रष्ट कर हमारे स्त्री-समाज का संख्याबल भयानक रूप से कम कर रहे थे, उस संकट को वैसे ही प्रत्याक्रमण द्वारा नष्ट करने के लिए हिन्दुओं द्वारा किये गये साहसपूर्ण और प्रसंगानुकूल प्रत्याघात भी मिलते हैं। यद्यपि इनकी संख्या पर्याप्त विरल हैं। उदाहरणार्थ मारवाड़ के राजा रायमल ने 600 मुस्लिम स्त्रियों का बलात् खींचकर उन्हें सामूहिक रूप से शुद्ध कराकर अपने विभिन्न सरदारों से उनका विवाह करवा दिया।

(5) मेवाड़ के राणा कुम्भा ने भी मुसलमानों को परास्त कर उनकी अनेक स्त्रियों को अपने राज्य में लाकर शुद्ध किया और उन्हें यथारूचि अपने राज्य के हिन्दू सरदारों से ब्याह दिया।

(6) विख्यात इतिहासकार टाड के 'राजस्थान' में भी इस प्रकार की अनेक घटनाओं का वर्णन हैं।

(7) राजपूतों के रासो नामक इतिहास ग्रन्थ में भी मुस्लिम स्त्रियों को फिर से हिन्दू बनाकर, उनसे विवाह कर उनकी संतानों को हिन्दू समाज में पचा लेने की घटनाएँ उल्लिखित हैं।

(8) नेपाल के राजा जयस्थिति ने मुसलमानों के सशस्त्र धार्मिक आक्रमण का बदला लिया था। वह मेधातिथि की ही वृत्ति वाला अर्थात् विधर्मी दुष्टों का डंक कुचल डालना चाहिए, इस मत का था। बंगाल के नवाब शमशुद्दीन ने जब सन् 1360 के लगभग नेपाल पर चढ़ाई की और सैकड़ों हिन्दू-बौद्ध मन्दिरों को ध्वस्त कर, हिन्दू-बौद्धों को तलवार के आतंक से भ्रष्ट करके प्रलय-सा मचा दिया था, तब राज्याधिकार प्राप्त होते ही इस वीर राजा ने मुसलमानों से पाई-पाई का बदला ले लिया था और उन्हें मार-मार कर नेपाल से भगा दिया। इतना ही नहीं तो एक सच्चे हिन्दूव्रती राजा को शोभा देने योग्य मुसलमानों के द्वारा गिरायेहुए सभी हिन्दू-बौद्ध मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया और सारे-के-सारे भ्रष्ट हिन्दुओं तथा बौद्धों की सामूहिक रूप से शुद्धि करवा ली।

(9) मुसलमानों द्वारा लिखित तत्कालीन तवारीखों (इतिहासों) में तो,'हमारी मुस्लिम स्त्रियों को अवसर मिलते ही ये काफिर हिन्दू लोग बना लेते हैं और उन्हें हिन्दू समाज में ब्याह देते हैं, इस प्रकार 'उलटा चोर कोतवाल को डाँटे' वाली कहावतके अनुसार बहुत शोर मचाया गया। हमारे हिन्दू-इतिहास ग्रन्थों में जिनका लेशमात्र भी उल्लेख नहीं है, कुछ ऐसी घटनाएँ इन मुस्लिम ग्रन्थों से ज्ञात हो सकती हैं।

(10) उदाहरणार्थ - 'तवारीख-इ-सोना' नामक मुस्लिम ग्रन्थ में लेखक कहता हैं कि - 'जिस समय महमूद गजनवी की चढ़ाई का धमू-धड़ाका जारी था, ठीक उसी समय अनहिलवाड़ा का राजा अवसर पाकर मुसलमान सेना के पीछे आ रही अनक तुर्क, मुगल, अफगान स्त्रियों को पकड़कर ले गया और हिन्दुओं ने बड़ी बेफिक्री से उनसे विवाह किया।' इस ग्रन्थाकार ने यह भी लिखा हैं कि,'अवसर मिलते ही समूह की समूह मुस्लिम स्त्रियों को पकड़कर ये हिन्दू भी बना लेते हैं।' इतना ही नहीं उसने तो हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम महिलाओं की शुद्धि की विधि का भी बड़े ही मनोरंजक ढंग से वर्णन किया हैं।

वह कहता हैं,'मुस्लिम स्त्रियों को सामुदायिक रूप से हिन्दू बनाते समय पुरोहित उनके मस्तक पर जौ-अक्षत छिड़कता हैं। बाद में उन्हें गोबर मिला एक प्रकार का जल (अर्थात् पंचगव्य) पिलाते हैं फिर उन्हें व्यवहार योग्य मानकर अपनी रूचि के अनुसार हिन्दू लोग उनसे विवाह कर लेते हैं। कहीं-कहीं तो इस प्रकार सामूहिक शुद्धिकरण के समय हिन्दू लोग उन स्त्रियों को कै करवाते थे और जुलाब देते थे। और फिर उनकी योग्यता के अनुसार विभिन्न हिन्दू जातियों एवं वर्गों में उन्हें बाँट देते थे। उत्तम स्त्रियाँ उत्तम हिन्दुओं के हिस्से में आती थीं। कुलीन स्त्रियों से सरदार लोग ब्याह करते और दासियों अथवा नौकरानियों से उसी वर्ग के लोग विवाह करते थे। उन सभी स्त्रियों की सन्तानें उन जातियों और वर्गो के हिन्दुओं में पूर्ण रीति से विलीन हो जाती थीं।

(11) अजमेर के अरूणदेवराय ने जिस समय मुसलमानों को हराकर उन्हें उस प्रदेश से बाहर खदेड़ दिया तब उनके संसर्ग से अपवित्र हुई उस भूमि की शुद्धि के लिए उसने वहाँ पर एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ से पवित्र हुए उस स्थान पर उसने एक भव्य और विस्तीर्ण मन्दिर तथा अनासागर नामक एक सरोवर निर्मित कराया। आस-पास के जो हिन्दू स्त्री-पुरूष भ्रष्ट होकर मुसलमान बन गये थे, उन सभी को इस सरोवर में स्नान कराकर शुद्ध किया गया। वहाँ पर एक स्थायी शास्त्र-व्यवस्था ही लागू कर दी गई कि जो कोई भ्रष्ट हिन्दू संकल्प और संस्कारपूर्वक उस सरोवर में स्नान करेगा वह शुद्ध होकर फिर से हिन्दू-धर्म में प्रवेश कर सकेगा।

(12) जैसलमेर के महाराजा अमरसिंह ने भी ऐसा ही एक विशाल यज्ञ कर अमरसागर नामक एक सरोवर बनवाया था। उस यज्ञ के प्रताप से इस पवित्र सरोवर में - पहले सिंधु प्रान्त में जो हजारों की संख्या में हिन्दू स्त्री-पुरूष मुसलमान बनाये गये थे उनके समुदाय के समुदाय आकर संकल्पपूर्वक मंत्र के साथ स्नान करते थे और फिर उन्हें हिन्दू-धर्म के अधिकारी पुरूषों द्वारा यह प्रमाणपत्र दिया जाता था कि वे अब शुद्ध होकर हिन्दू बन गये हैं।

(13) इस विषय में स्मृतिकार देवल ऋषि और भाष्यकर मेधातिथि के समान मुसलमानों के धार्मिक आक्रमण रोकने के लिए हिन्दुओं में भी प्रत्याक्रमणकारी शक्ति संचारक तथा क्रांतिकारी शास्त्राधार उत्पन्न करने वाले, मौका पड़े तो शत्रु-विनाश के लिए नया शास्त्र भी गढ़ने वाले और प्रत्यक्ष शंकराचार्य के पीठाधीश्वर होने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ--ऐसे विद्यारण्य स्वामी भी यहाँ यथाक्रम से उल्लेखनीय हैं। श्री विद्यारण्य स्वामी ने शंकराचार्य के धर्मपीठ का ही नहीं तो स्वधर्म-रक्षा के लिए मुसलमानी राज्य उलटकर स्वतंत्र हिन्दू राज्य स्थापित करने वाले क्रांतिपीठ का भी आचार्यत्व स्वीकार किया था। उन्होंने हिन्दू राष्ट्र के हितार्थ केवल धार्मिक शुद्धि की शास्त्रोक्त व्यवस्था ही नहीं बताई अपितु मुसलमानों द्वारा बलपूर्वक भ्रष्ट किये गये हरिहर और बुक्क नामक दो तरूण वीरों का प्रकट रूप से शुद्धि संस्कार भी करवाया और जब इन वीर-बन्धुओं ने अपने पराक्रम से तलवार के जोर पर मुसलमानों को अनेक लड़ाइयों में बार-बार हराकर सन् 1336 में अपेक्षित हिन्दू-राज्य स्थापित किया तब स्वामी विद्यारण्य ने अपने हाथों शुद्धिकृत हरिहर का हिन्दू-सम्राट के रूप में राज्याभिषेक भी किया।

इन्हीं विद्यारण्य माधव ने गोमान्तक में मुस्लिम राज्य सत्ता का उच्छेद कर धर्मभ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्ध करने के लिए माधवतीर्थ नामक एक सरोवर बनवाया और धर्मभ्रष्ट किये गये हिन्दुओं को उसमे मंत्रपूर्वक स्नान करवाकर उन्हें सामुदायिक रूप में शुद्ध किया और इस प्रकार की शास्त्रीय व्यवस्था लागू कर दी, जिससे आगे भी इसी प्रकार का शुद्धिकरण चलता रहे।

(14) श्री रामानुजाचार्य और उनके शिष्य श्री रामानन्द तथा बंगाल के चैतन्य महाप्रभु आदि प्रभावी धार्मिक नेताओं ने भी म्लच्छों द्वारा भ्रष्ट किये गये सैकड़ों हिन्दुओं को वैष्णव धर्म की दीक्षा देकर शुद्ध किया था।

(15) यह तो विख्यात ही हैं कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों का बदला लेकर, हिन्दुओं का राज्य स्थापित करने वाले परम्प्रतापी श्री छत्रपति शिवाजी महाराज ने बजाजी निंबालकर और नेताजी पालकर को भ्रष्ट होकर मुसलमान हो जाने के उपरान्त शुद्ध कर-फिर से हिन्दू बना लिया था।

जवाबी हमला इसे कहते हैं।

(16) अन्त-अन्त में औरंगजेब ने एक बार फैसला कर डालने के लिए, चतुरंगिणी सेना लेकर हिन्दू धर्म पर जो चढ़ाई की थी-उस समय मराठों पर हमला करने के लिए जब वह प्रचण्ड सेना लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा, तो रास्ते का राजपूती काँटा जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिए राजपूतों पर धार्मिक आक्रमण किया। किन्तु, उसके उधर दक्षिण की ओर बढ़ जाने के पश्चात् उसके अत्याचारों का बदला उसकी ही नीति के अनुसार निकालने के लिए तथा हिन्दुओं के अपमान और संख्याबल की हानि की भरपाई करने के लिए, उन पर जोधपुर रियासत के राठौरों ने जो धार्मिक प्रत्याक्रमण (जवाबी हमला) किया था, उसे एक प्रसिद्ध उदाहरण के रूप में उद्घृत किया जा सकता है।

जोधपुर के प्रबल महाराणा जसवंतसिंह और वीर दुर्गादास राठौर के नेतृत्व में, औरंगजेब द्वारा मन्दिर को गिराकर खड़ी की गई मस्जिदों को ही नहीं तो सारी-की-सारी मस्जिदों को भी धाराशायी कर, उन स्थानों पर मन्दिर निर्मित किये गये। केवल भ्रष्ट किए गए हिन्दुओं को ही नहीं तो रियासत के जितने अधिक हो सके उतने मुसलमानों की सामुदायिक शद्धि कर राठौरों ने उन्हें हिन्दू बना डाला। हिन्दू-मन्दिरों में गोमांस फेंकते हुए, मुस्लिम सैनिकों के आगे बढ़ते ही, उनके पीछे राठौरों की सेना मस्जिदों में सूअर काट-काट कर 'शठे-शाठ्यम् समाचरेत्' की नीति के अनुसार बदला लेती हुई चलती थी। मुसलमानों की सैकड़ों स्त्रियाँ हिन्दू बनाकर राजपूतों से ब्याह दी गयीं अथवा जिस प्रकार मुस्लिम स्त्रियों को दासी बनाकर रख लिया गया। हिन्दुओं के इस जवाबी हमले का रौद्र रूप देखकर राजपूताने का सारा मुस्लिम समाज बहुत आतंकित हो गया। मुसलमानों के साथ खान-पान ही क्यों, उनकी स्त्रियों को घर में रख लेने पर भी हिन्दू का सामाजिक बहिष्कार नहीं हुआ। लगभग चालीस वर्ष तक राजस्थान की उस रियासत के गाँव-गाँव में हिन्दुओं का यह जवाबी हमला तीव्रता से चलता रहा। यह कहना आवश्यक नहीं कि वीर दुर्गादास की सत्ता समाप्त होते ही हिन्दू समाज का उक्त रौद्र रूप भी विलीन हो गया। इसका कारण यह था कि जाति-बन्ध में बंधे हुए उस समय के हिन्दुओं का स्थायीभाव जवाबी हमले का न रहकर जाति-बहिष्कार का हो गया।

हिन्दूराष्ट्र की पुनरूत्थान-शक्ति की एक आश्चर्यजनक घटना

जिस समय एक ओर हिन्दुओं पर महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी आदि के आक्रमणों के समान, हिन्दू धर्म को उखाड़ डालने वाले आक्रमणों की परम्परा जारी थी, और जिस समय जाति-भेद, शुद्धिबंदी ओर सद्गुण विकृति आदि अपनी ही आत्मघातक रूढ़ियों के कारण हिन्दुओं के संख्याबल का ह्रास हो रहा था- ऐसे समय पर भी युग-युग से गतिमान उसके अंग-अंग में व्याप्त हिन्दू राष्ट्र की प्रचण्ड प्रचार-शुद्धि ( ) का भी स्फुरण दूसरी ओर से किस प्रकार होता जा रहा था और हिन्दू राष्ट्र की राजसत्ताएँ ही नहीं अपितु अन्य जातियों के हजारों नये-नये लोग भी हिन्दू राष्ट्र, हिन्दू धर्म को किस प्रकार आत्मसात करते जा रहे थे इसके उदाहरण के रूप में आसाम की 'अहोम' जाति के विषय में हम यहाँ उल्लेख करते हैं। इसी काल में हिन्दू साम्राज्य का विस्तार हिन्दूचीन (इण्डोचीन) तक किस प्रकार हो गया था, इसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया ही जा चुका हैं।

जिस समय गंगासागर (बंगाल का उपसमुद्र), सिन्धु सागर (मुम्बई का उपसमुद्र) और वहाँ से दक्षिण की ओर फैले हुए हिन्दू महासागर आदि को अफ्रीका के दक्षिणी छोर से लगातार चीन के किनारे तक, दिग्विजयी लड़ाकू और व्यापारी नौदलों की सैकड़ों बड़ी-बड़ी हिन्दू जल-तरियों और हिन्दू जल नौकाओं ने व्याप्त कर डाला था, उस समय समुद्र-यात्रा-निषेध का अभाग्यपूर्ण विचार भी हमारे मन मे आना असम्भव था। इसलिए उत्तर की ओर छोड़कर अन्य दिशाओं में विजय पर विजय प्राप्त करते हुए लोगों के समुदाय के समुदाय को हिन्दू बनाते हुए, हिन्दू धर्म का प्रचार प्रसार किस प्रकार वृद्धिगत हो रहा था, इस संबंध में ही अहोम जाति का एक उदाहरण हम नीचे दे रहे हैं।

आठ्वीं शती के आसाम से लगे वर्मन्, सालस्तम् और पाल घराने के हिन्दू राज्य पर, आसाम के उस ओर बिखरी हुई अनेक टोलियों में से शान टोली की 'अहोम' नामक शाखा - जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी से लड़ाई-झगड़े और लूटपाट करती हुई जीवन बिता रही थी- का प्रभाव बढ़ने लगा। अन्त में उस राज्य में सन् 1228 में चूकूक राजा की सत्ता प्रारम्भ हुई।

स्वयं अपने को और प्रजा को अहोम अर्थात बेजोड़ कहलवा लेने वाला यह पहला राजा था । इन नए राजकर्ताओं ने मुगल सत्ता का सफलतापूर्वक सामना किया। अपने राज्य को भी उन्होंने अहोम नाम से पुकारा । कुछ विद्वानों का मत हैं कि यह आसाम नाम अहोम का बिगड़ा हुआ रूप हैं। परन्तु आश्यर्च यह हैं कि प्राणवान हिन्दुओं के प्रचारकों ने उन दिनों भी उन अनेक पार्वत्य टोलियों में हिन्दू धर्म के तत्त्वों और संस्कारों को इतनी गहराई से भर दिया था कि शक और हूणों की तरह अन्य अनेक लड़ाकू टोलियों के अनुसार शान टोली के इस विजेता राजा ने भी राज्यारोहण करते सन् 1554 में अपनी टोली के अनेक लोगों के साथ हिन्दू धर्म को अंगीकार कर लिया और आगे चलकर हजारों लोगों की यह टोली भी धीरे धीरे हिन्दू धर्म में समाहित हो गयी। उस राजा ने शान भाषा का अपना पुराना नाम बदलकर 'जयध्वजसिंह' नया क्षत्रिय नाम रख लिया। उसके बाद के अन्य सभी अहोम राजाओं ने अपने ऐसे ही क्षत्रिय नाम रख लिए।

अटक या समुद्र पार जाना कब और क्यों निषिद्ध हुआ -

ऊपर लिखी अहोम सरीखी वीर जाति के हिन्दुओं के उस पतन काल में भी स्वयं प्रेरणा से हिन्दू धर्म अंगीकार करने से यह स्पष्ट हो गया कि उस समय हिन्दू जाति व्यवस्था में उन्हें शामिल करने में शुद्धिबंदी अथवा जातिभेद जैसी कोई अड़चन नहीं थी । जाति परिवर्तन से होता यह था कि जिस प्रकार हिन्दुओं की अनेक जातियां थीं हिन्दू राष्ट्र में अपने अपने विभिन्न जाति रूपी शिविरों, किन्तु एक ही झंडे के नीचे सुखपूर्वक बसती थीं, उसी प्रकार एक जाति के शिविर वालों की संख्या और बढ़ जाती थी । उनके कुछ आचार विचार तो अपनी जाति तक ही सीमित रहते थे और शेष सब व्यवहार हिन्दू स्मृति और निर्बन्धों के अनुसार सबके साथ समान रूप से चलते थे।

मुसलमानों के आततायी पन के कारण उस समय शुद्धि बंदी का उत्तर पंजाब तक ही कठोरता से पालन किया जाता था। सारे हिन्दुस्थान के अन्य स्थानों पर मुसलमानों के वर्चस्व का संकट नहीं था। कुछ स्थानों से आगे मुसलमान घुस ही नहीं पाए थे। इसीलिए सम्पूर्ण समाज के सम्मुख शुद्धि बंदी की समस्या भी इतनी तीव्र नहीं थी। यहाँ पर एक बात यह भी कह दूं कि आगे चलकर अटकबंदी अर्थात सिन्धू लांघकर मलेच्छ देशों में जाना हिन्दू धर्म के अनुसार निषिद्ध और जाति बहिष्कार के योग्य अपराध की जो बात हमारी स्मृतियों और धर्म संहिताओं में प्रविष्ट हो गयी हैं उसकों भी उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए सनातन धर्मियों ने हिन्दू धर्मरक्षक के विचार से ही स्पष्ट किया होगा। कारण, महमूद गजनवी के बाद भी सिन्धू पार के सम्पूर्ण प्राचीन भारत के भाग को हिन्दू राजाओं ने ठीक हिन्दूकुश पर्वत तक फिर से जीत लिया था। खोतान-तक हिन्दू राज्यों का विस्तार था यह तथ्य अब इतिहास द्वारा भलीभाँति सिद्ध हो चुका हैं

इसलिए सिन्धु नदी लांघकर जाने का अर्थ हिन्दू अर्थात् वैदिक धर्म त्याग देना, और स्वयं भ्रष्ट हो जाना समझा ही नहीं जाता था।

बिलकुल उस समय तक 'कृण्वन्तों विश्वमार्यम्' की प्रतिज्ञा हमारे झंडे पर अंकित थी। हमारे धर्म की स्पष्ट अनिर्बन्ध आज्ञा थी कि 'आर्य धर्म के प्रचारार्थ सारे संसार में संचार करो।'

किन्तु, इसके बाद जब सिन्धु के पार के समस्त हिन्दू राज्यों का पराक्रम सूर्य अस्त हो गया और मुस्लिम जैसे राक्षसी समाज द्वारा हिन्दुओं को नारकीय यंत्रणा दी जाने लगी तथा सहस्रावधि हिन्दुओं को शस्त्र-बल से भ्रस्ट किया जाने लगा तब स्वकीय शस्त्रबल का कोई आधार शेष न रहने के कारण विवशतावश उतने समय तक के लिए उस समय लिखी गई किन्हीं स्मृतियों में अटक न लाँघने की आज्ञा समाविष्ट कर दी गई होगी, उपर्युक्त इतिहास से यही सिद्ध होता हैं। इसका एक प्रमाण यह भी हैं कि हमारी स्मार्त व्यवस्था में समय और परिस्थिति के अनुसार राष्ट्र के लिए हानिप्रद प्रतीत होने वाले धर्माचरण को निषिद्ध करने की सुविधा थी। यथा--

अन्ये कृतयुगे धर्माः त्रेतायां द्वापरे परे।
अन्ये कलियुगे नृणाम युग ह्रासानुरूपतः।।

इस प्रकार उक्त व्यवस्था के अनुसार ही जब मुसलमानों के आक्रमणों के कारण सिन्धु पार के हिन्दू राज्य अस्त हो गये और हिन्दू पारसी आदि गैर मुस्लिम जातियों को बलात् मुसलमान बनाने वाली आततायी राजसत्ता की उधर स्थापना हो गयी तब सिन्धु नदी लांघ्कर उस ओर जाना स्वधर्म-त्याग के समान ही भयंकर हो गया। उस समय 'सिन्धु नदी लांघकर उस ओर जाना पाप है', 'सिन्धु पार की भूमि म्लेच्छ-स्थान मानी जाये' आदि आपत्कालीन नयी आचरण व्यवस्था उस समय की स्मृतियों द्वारा निर्देशित की गई। यहाँ से ही अटक-बन्दी प्रारम्भ हुई होगी।

भविष्य पुराण में जिस श्लोक में हिन्दुस्थान की नई सीमा रेखा बताई गई हैं, जिसमें सिन्धु के इस पार का देश ही 'सच्चा हिन्दुस्थान' कहा गया हैं उसे पहले पहल हमने ही खोजकर प्रसिद्धि दिलाई थी। वह ऐतिहासिक श्लोक इस प्रकार हैं-

सिंधु स्थानमिति प्राहुः राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्।
म्लेच्छा स्थानं परं सिन्धोः, कृतं तेन महात्मना।।

यह इसी समय अर्थात् मुहम्मद गोरी के पश्चात् ही स्मार्त व्यवस्था में लिया गया होगा। ओर हाँ, इस श्लोक में उसका काल भी निर्देशित कर दिया गया हैं। उस काल के जिस हिन्दू राजा ने यह सीमा निश्चित की और जिसका उल्लेख इस श्लोक में 'तेन महात्मना' लिखकर किया गया हैं, वह बहुत करके हिन्दुओं का सबसे प्रमुख राज्यकर्त्ता महाराजा भोज ही होना चाहिए।

समुद्र-यात्रा-वर्जन की आज्ञा स्मृतिकारों ने नहीं दी थी

हमारे राष्ट्र पर देश की सीमाओं को उत्तर और वायव्य दिशा की ओर सिंधु के पास संकुचित करने का दुःखद प्रसंग यहाँ यद्यपि वहाँ हुए मुस्लिम आक्रमण के कारण आया था तो भी वह उस सीमा तक ही सीमित रहा। शेष पंजाब के इस ओर का सारा भरतखंड, सारा सिंधु स्थान तथा नई-नई जातियों को हिन्दू धर्म में समाविष्ट करने वाले आसाम प्रान्त तक और वहाँ से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण महासागरों पर समुद्रीय दलों द्वारा स्वामित्व स्थापित कर हिन्दूचीन (इंडोचीन) तक अर्थात् सारे ईशानकोण से लगाकर पश्चिम सीमा तक हिन्दू राष्ट्र की अप्रतिक सत्ता बड़े ठाट से विराजमान होती हुई नई-नई विजय प्राप्त कर रहीं थी। सिंहल द्वीप (लंका) भी भारत का एक छोटा -सा 'बाल राज्य' (.....) था कारण

सिंहलद्वीप में भी अधिकतर भारतीय राजवंश ही राज्य करते चले आ रहे थे। यही बात लखद्वीप (लक्षद्वीप), माल द्वीप के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं। इस प्रकार पश्चिम समुद्र से अफ्रीका तक के सारे द्वीप पुन्ज उस काल तक हिन्दुओं की ही सामुदायिक सत्ता के नीचे थे। ऐसी स्थिति में यह कल्पना करना पागलपन ही होगा कि वैदिक हिन्दू-धर्मीय स्मृतियों ने समुद्र पार जाने की निषिद्ध कर दिया होगा। क्योंकि, भारत के प्राच्य, पाश्चिमात्य और दक्षिण समुद्र-सीमाओं पर आधिपत्य जमाने वाले 'राजेन्द्र चोल' के समान राजागण वैदिक धर्म का ही पालन करने वाले थे। उत्तर में प्रचलित सम्राट पदवी की तरह वे अपने को 'त्रिसमुद्रेश्वर' कहलवाते थे।

समुद्र-यात्रा-बंदी कब और क्यों हुई?

जिस प्रकार विधर्मियों द्वारा सताये जाने के कारण सिन्धु नदी के उस पार के देशों में जाने को धर्म के बाहर कहकर अटकबंदी हुई, उसी प्रकार दक्षिण की ओर भी तीनों समुद्रों मे होकर यात्रा करना भी धर्म के बाहर घोषित किया गया। स्मृतियों में हिन्दू धर्म शास्त्रकारों को जब इस प्रकार की निषेधात्मक व्यवस्था करनी पड़ी तब हिन्दू समाज दासता के कारण अत्यंत पंगु हो गया था। यह कारण 'अन्ये कृतयुगे' आदि श्लोक में अप्रत्यक्ष रीति से सन्निहित हैं। आगे आने वाली परिस्थिति का सामना करने के लिए 'युगह्रास' और 'कलिवर्ज्य' प्रकरण की युक्ति स्वीकार की गयी। वैसे 'कलिवर्ज्य' और 'युगह्रास' कृत्यों के कारण 'पूर्वकाल की स्मृतियाँ अपरिवर्तनीय हैं;' इस तत्व के पालन में व्याघात उत्पन्न होता था। इसलिए उसकी चर्चा न कर उस समय की परिस्थिति तथा समाज-हित की दृष्टि से स्मृतिकारों के लिए पुराने विधि-निषेधों में परिवर्तन करना अपरिहार्य था।

हमारे द्वारा इसी अध्याय में ऊपर उल्लिखित अनेक स्मृतियों में पाये जाने वाले वचनों से यह और भी स्पष्ट हो जाता हैं। उस स्मार्त (.....) पद्धति के अनुसर मेधातिथि अथवा देवल के काल के बाद भी रचित अथवा संशोधित प्रायः आधुनिक स्मृतियों में ही -

'समुद्रयातुः स्वीकारः कलौ पंच विवर्जयेत्'

आदि समुद्र-यात्रा-निषेध करने की, समुद्र-यात्रा करने वाले व्यक्ति को अपने धर्म, जाति में ग्रहण न करने की उसको वापस लेने के लिए कोई प्रायश्चित विधि ही नहीं हैं- इत्यादि प्रकार की कड़ी मर्यादा लगाई गई मिलती हैं। यह मर्यादा कब लगाई गई? यह वास्तव में वह समय हैं जब हमारे पश्चिमी समुद्र में ईसाइयों का और उनमें भी विशेषतः पुर्तगालियों का प्रभाव बढ़ा। जिस समय उन्होंने गोमांतक जीत कर वहाँ के हिन्दुओं पर सशक्त आक्रमण किया और वहाँ के हजारों हिन्दू स्त्री-पुरूषों को मुसलमानों की ही भाँति अत्याचारपूर्वक भ्रष्ट करते हुए ईसाई बनाने का जोर-शोर से प्रयत्न आरम्भ किया।

जिस समय अरबों ने अपनी नाविक सेनाएँ खड़ी कर हिन्द महासागर में आगे बढ़कर जावा-सुमात्रा और हिन्दूचीन तक हमले किए और वहाँ के हिन्दू-बौद्ध क्षेत्रीय राज्यों पर, अन्य अमुस्लिम राज्यों पर किये गये धार्मिक अत्याचारों की ही भाँति बलात्कार इत्यादि कर, उन्हें मुसलमान बनाने के लिए राक्षसी, अघोर कृत्य किये तथा जिस समय कालचक्र के कारण हिन्दुस्तान के चोल, पाण्ड्य इत्यादि राज्य- जिनकी सिन्धु सेनाएँ कभी हिन्दुद्वीप समुदाय के हिन्दू राज्यों की सहायतार्थ जाती थीं-मुसलमानों द्वारा विजित हो जाने के कारण उद्ध्वस्त हो चुके थे-उस समय के राजा समुद् के पास जाने में असमर्थ हो गये।

इन कारणो से ही हिन्दुयो की राजकीय ,सैनिक तथा धार्मिक दुर्दशा के उस काल मे हमारी स्मृतिया में सिन्धुबंदि की कड़ी आज्ञा डाली गई हागी। इसी के परिणामस्वरूप उस काल की अत्याधुनिक स्मृतियो मे अटकबंदी और सिन्धुबन्दी के

श्लोक पाये जाते हैं।

इस पर से हमे यह भी मान लेना चाहिए कि तीनो समुद्रो को लांघकर जाने वाले हिन्दु जन उन ईसाई और मुसलमानों के बालात्कार के अनिवार्य रूप से ही शिकार होने लगे तथा वे असहाय से इन मानवीय मगरो के पेट मे ही जाने को बाध्य किये जाने लगे और समुद्र -पार उनकी सहायता के लिए कोई हिन्दु राज्य शक्ति भी शेष न रही, तो उस समय हमारे समाज के अग्रनेताओं ने निरूपाय होकर यह धर्माज्ञा लागू की होगी कि कोई भी हिन्दु अब समुद्र पार न जाए। यह कृत्य भी उन्होने हिन्दु समाज के हित जैसी सदिच्छा से ही किया होगा।
जिस देश मे अपने धर्म अथवा राष्ट्र के लोगो की अवहेलना होती हो,जहाँ ईसाई ,मुसलमान आदि के धर्मशास्त्र उसके लोगो पर लादे जाते हों और ऐसे संकटो को समाप्त करने की समाजशक्ति तथा सैनिक सामर्थ्य जिस राष्ट् मे न रह गई हो,तो ऐसी अवस्था में राष्ट्र-रक्षा के लिए उस राष्ट् के पास एक ही उपाय शेष रह जाता हैं कि वह यह बंदी लगा दे कि इस राष्ट्र का कोई भी नागरिक उस शत्रु देश में न जाये।

इन निषेधाज्ञाओं में भूल कहाँ हुई

उस प्रदीर्घ आपत्काल के लिए लाभप्रद अटकबंदी,सिन्धुबंदी जैसे बन्धन यद्यपि भूल से ही स्मृतियो में समाविष्ट किए गये थे,तो भी क्षेपक के रूप में समाहित उन नवीन प्रक्षिप्त श्लोको में भी सनातनत्व का अधिकार प्रतिपादित करने के लिए तथा जो पवित्रता और अनुलंघनियता पुरानी आज्ञाओं के लिए बरती जाती थी,वही इनके लिए भी व्यवहृत की जाये -इस **दराग्रह के** कारण इन श्लोको के बाद भी एष ःसनातन : की परम्परागत स्मृति शास्त्र की अधिकृत मुद्रा लगा दी गई ।

इससे जिन परिस्थितियो और जिस काल में सिन्धुबंन्दी ,अटकबन्दी आदि हितावह थी,उनके बीत जाने के बाद भी अटक पार कर अफगानिस्तान ,ईरान आदि पर चढ़ाई कर उन्हे जीतने की शक्ति हिन्दु सैनिको में होने पर भी ,सिन्धु पार कर उन पर चढाई करने की सुद्बुद्धि उन सैनिको में नही जागी ,इसी प्रकार पेशवाओं अथवा रणजीतसिंह के समय राज्य -सत्ता का प्रखर प्रताप वृद्विगत होने पर भी उस परिवर्तित परिस्थिति में हिन्दु-हित-घातक सिद्व होने वाला धर्मभीरूता का यह दुर्बल भाव समाज से नष्ट नहीं हुआ हैं। उस समय भी धर्मपालन में अन्धभक्त -समाज अटक पार जाना पाप हैं- इस डर से ग्रसित रहा। अर्थात एक समाज के लिए हितकारी सिद्व होने वाली रूढ़ी के आगे चलकर राष्ट्र के लिए अनर्थ का कारण बन जाने पर भी समाज उसे (शास्त्र-भय के कारण) छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता था । जब उस रूढ़ि को तोड़ना ही राष्ट्रहितकारी अर्थात धार्मिक दृष्टि से भी पुण्प्रद था । उस समय भी 'उसे तोड़ना पाप हैं' ऐसा आग्रपूर्वक माना जाता।

तो फिर हमारे अर्वाचिन ऋृषियों ने नवीन प्रक्षिप्त श्लोको के साथ जो 'एष धर्मःसनातनः'जोड़कर धर्मलोप का डर खड़ा कर दिया यही बड़ी भारी भूल हुई।

सिन्धु बन्दी का ही उदाहरण लें -यदि इन आधुनिक शास्त्रकारों ने स्पष्टरूप से यह बता दिया होता कि पहले 'कृतयुग' में हमारा आर्य राष्ट्र समुद्र लाघंकर अनेक द्वीप द्वीपान्तरों में राज्य करने में समर्थ था। और राजेन्द्र चोल तक हमने 'त्रिसमुद्राधीशत्व' भी प्राप्त कर रखा था तथा उस समय समुद्र लांघना हमारे धर्म प्रचार तथा राज्य प्रसार के लिए आवश्यक था और इसीलिए पुण्यप्रद भी था। परन्तु अब चूँकि दुर्दैव से अपने राष्ट्र की नौसेना शक्ति और स्वामित्व को फिर से प्राप्त नही कर लेते तब तक और केवल तभी तक हम हिन्दु लोगो को दुर्बलता की दशा में समुद्र की ओर के शत्रु -राष्ट्रो में जाना अपने राष्ट्र के लिए घातक और इसीलिए पापप्रद्र होगा और इन्हीं कारणो से केवल उतने ही समय के लिए सिन्धुबंदी हैं।

'युग हासानुरूपतः' का वास्तव में अर्थ 'शक्ति हासानुरूपतः' ही करना चाहिए। 'एष धर्मः सनातनः'का डर केवल उतने समय के लिए मानना चाहिए जब तक हम पुनः शक्तिशाली नहीं हो जाते यदि यह बात उस समय के स्मृतिकारों ने स्पष्ट रूप से बता दी होती तो इस अटकबन्दी और सिंधुबन्दी के जो भयानक दुष्परिणाम हिन्दुराष्ट्र को भोगने पड़े वे न भोगने पड़ते तथा उनमें से बहुतो को टाला जा सकता था। परन्तु 'कलिवर्ज्य' प्रकरण में ही जाति -भेद ,शुद्धिबंदी , अटकबंदी ,समुद्रबंन्दी आदि निषेधो को उस समय के शास्त्रकारों ने मुख्य स्मृतिकार के नाम से प्रक्षिप्त श्लोको के रूप मे प्रचलित किया। इसके कारण ही वे स्थायी रूप से कलियुग की समाप्ति तक अर्थात् सदा के लिए पालनीय हो गये।

आगे हिन्दु राष्ट्र के लिए यदि बन्दियो को तोड़ना ही हितवाह हुआ होता और उन्हे तोड़ने की शक्ति भी हिन्दुओं में आई होती तो भी 'कली पंचविवर्जित :'-स्मृति की आज्ञा होने के कारण की समाप्ति तक अर्थात् प्रलयकाल तक उसे तोड़ने के लिए भावुक प्रचण्ड हिन्दु समाज तैयार ही न होता। फिर ,कलियुग कब शुरू हुआ? कब समाप्त होगा? और फिर प्रलयोपरांत सतयुग कब आयेगा? इसके विषय में हमारे शास्त्रकारो में जो विक्षिप्त हैं,उस घपले की समस्या ही भिन्न हैं।

ईसाइयों के धार्मिक आक्रमणों का प्रारम्भ

इस ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में हम यह उल्लेख कर आये हैं कि ईसाइयों से हम हिन्दुओं का धार्मिक सम्बन्ध कितना पुराना रहा हैं। ईसाई कथाओं के अनुसार सीरिया में पहले ईस्वी सन् में ही जब ईसाई धर्म का प्रचार होने लगा तब स्वंय ईसा को फाँसी पर टाँगने वाले ज्यू धर्मीय लोगो द्वारा ईसाईयो का बड़ी निर्ममता से उत्पीड़न होने लगा। उस समय थोड़े से जिन ईसाईयो को हिन्दुस्तान आने का जलमार्ग मालूम था,वे टोलियो में भागकर हिन्दुस्तान में जामोरिन (यह शब्द सामुद्रीय का अपभ्रंश हैं) नामक हिन्दु राजा के पास आश्रयार्थ आये। वास्तव मे इन विधर्मियो को उस हिन्दु राजा द्वारा बिना किसी शर्त के अपने समुद्र तट पर कदम भी नही रखने देना चाहिए था। किन्तु सद्गुण-विकृति के रोग से ग्रसित उस हिन्दु राजा ने उन सीरियन ईसाईयो को आश्रय दिया। इतना ही नहीं उन्हें बसने के लिए एक भू -भाग भी दान में दे दिया । इतना ही क्यों ग्राम-पंचायत में (एक स्वतन्त्र जाति के रूप मे) उन्हे समान अधिकार का पटटा् (ताम्रपट) भी लिख दिया। परन्तु धीरे -धीरे उन सीरियन ईसाइयों की समझ में यह भली-भाँति आ गया कि अपने साथ केवल खिलाने -पिलाने मात्र से ही हिन्दु भ्रष्ट होकर ईसाई बन सकते हैं और वैसा करना प्रारम्भ कर सीरियन ईसाईयों ने हिन्दुस्थान में ईसाई-धर्म के प्रचार का सर्वप्रथम नारियल फोडा़।

ईसाइयो के देश इंग्लैण्ड में भी जब ईसाइयत का नाम नहीं सुना जाता था ,उस समय हिन्दुस्तान में हिन्दु लोग कपट पूर्वक ईसाई बनाये जा रहे थे। उस काल का ईसाई प्रचार का इतिहास प्रत्येक हिन्दु के लिए पठनीय वस्तु हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि उस धर्म-परिवर्तन को और सरल बनाने के वाली रूढिया उस पहली शताब्दी में भी हमारे समाज में मूल-धर्माचरण के रूप समाविष्ट हो चुकी थी। यहाँ स्थानाभाव तथा इस ग्रन्थ के मुख्य विषय से असम्बद्ध होने के कारण उस विषय को हम छोड़ देते हैं।

फिर भी एक उदाहरण देखने लायक हैं। एक ग्राम के एक तालाब को तीर्थ मानकर हिन्दु लोग उसमें स्नाान किया करते थे। इसे देखकर उन सीरियन ईसाईय्रों के कुछ प्रचारक (मिशनरी) पादरियों के मन में विचार आया कि जो हिन्दु यह मानते हैं कि ईसाई के हाथ का पानी पीने या उसकी राटी खाने से हम भ्रष्ट हो जाते है, उन्हें भ्रष्ट करने की युक्ति यहाँ की जा सकती हैं। बस ,फिर क्या था जिन बड़े -बड़े तालाबो में हिन्दु स्नान करने जाते भरने के लिए जाने लगे ,उनका पानी पीने लगे। फिर कुछ दिनों के बाद वे ही पादरी अपनी सामूहिक प्रार्थनाओ में चिल्ला -चिल्ला कर घोषणा

करने लगे, 'हे हिन्दुओं ! हम ईसाई लोग ईसामसीह के अनुयायी हैं हम हिन्दु नहीं हैं । हम तुम्हारे इन तालाबो मे नहाते रहे हैं। अपनी पूजा -प्रार्थना कर हम ईसाई जो चरणोदक पीते हैं ,उसे ही हमने तुम लोगो में बाँटा हैं ,जिसे तुमने बड़ी श्रद्धा -भक्तिपूर्वक पिया हैं । तुम्हारे हिन्दु धर्म के अनुसार जो ईसाई के हाथ का पानी पीता हैं,वह जन्म भर के लिए भ्रष्ट होकर ईसाई हो जाता हैं। तुम्हारे धर्म की यही आज्ञा हैं। इसलिए अब तुम ईसाई हो गये हो । तुम्हारे अन्य हिन्दु भाइयो को धोखा न हो इसलिए हम सच्चरित्र लोग इस सत्य का उद्घोष कर रहे हैं। यह समाचार विभिन्न ग्रामो के हिन्दु और ईसाईयो में बात की बात में फैल गया,बड़ी गड़बड़ी मची। हिन्दु भ्रष्ट हुए इसलिए उनका जाति-बहिष्कार कर दिया गया। धीरे -धीरे अन्य हिन्दुओं द्वारा वे सारें गाँव के गाँव ईसाई मानकर बहिष्कृत कर दिये गये।

उस समय मानव-जाति विभिन्न रीति से धार्मिक अन्ध श्रद्धा में किस प्रकार जकड़ी हुई थी ,इसका एक और मनोरंजक किन्तु प्राणघातक प्रसंग आगे लिखता हूँ। पहली शताब्दी में हिन्दुस्तान में आए इन ईसाईयों में भी विभिन्न पंथ थे। उनमें एक प्रकार की होड़ सी लगी हुयी थी कि दूसरे देशो में ईसाईसयत का सच्चा प्रचार कौन अधिक कर पाता हैं। इस स्पर्धा के कारण जिस पंथ ने हिन्दुओ के उपर्युक्त गाँव भ्रष्ट किये थे,उनका अन्य ईसाईयो ने विरोध किया और ईष्यावश अपने यूरोपीय आचार्यो को सूचना भेजी कि 'दूसरे पंथ के ईसाई लोग हिन्दूस्तान के मूर्ख और कुछ-कुछ पागल हिन्दुओं को फँसाते हैं और उन्हें ईसाई बनाकर दक्षिणा वसूल करते हैं। वे ईसामसीह द्वारा प्रतिपादित धर्मतत्व का कोई प्रचार नहीं करतें ,इसिलिए उनके प्रचार द्वारा ईसाई बने हिन्दुओ की संख्या सही न मानी जाए । साथ ही उन्हे इसप्रकार गलत प्रचार करने से रोका जाए ,जिससे हमारी इज्जत बनी रहे। अब वे धर्मभ्रष्ट लोग अपने को ईसाई कहते और दूसरे पंथ के वे ईसाई पादरी उन्हे हिन्दु ही मानते थे।

वे उन्हे चर्च में आने देते और न उनकी दक्षिणा स्वीकार करते।ऐसा कई वर्ष तक चलता रहा। अन्त में इस समस्या का निदान सम्भवतः दक्षिणा के कारण हुआ। क्योंकि ,कुछ दिनों के बाद यूरोप के उन आचार्यो(बड़े पादरी) की आज्ञा हुई कि 'उन सब भ्रष्ट हुए हिन्दुओं को ईसाई ही समझा जाए और उनसे वह दक्षिणा की रकम अवश्य ले ली जाए।'

इसके पश्चात् आगे चलकर तो एक खुले रूप में सभी ईसाई पंथो के प्रचारकों (मिशनरियों) ने उस तरह के कपटपूर्ण चालवाजियें से ही नहीं तो बलपूर्वक शस्त्रभय दिखाकर भी हिन्दुओ को धड़ल्ले के साथ ईसाई बनाना प्रारम्भ कर दिया।इसके साथ यह भी घोषित किया गया कि हिन्दुस्थान में इस प्रकार ईसाइयत फैलाना ही ईसाई चर्च का पवित्र कार्य हैं। फिर तो पानी पिलाकर अथवा रोटी खिलाकर हिन्दुओं के भ्रष्ट करने के प्रारभिक कुटिल प्रयत्नो के सम्बन्ध में हुए वाद -विवादो का कुछ मतलब ही न बचा।

आगे चलकर सीरियन और अन्य साधारण ईसाईयों के बीच उनके देश में हो रहे झगड़ो के कारण वैमनस्य बढ़ा।यूरोप के विविध ईसाई पंथेा में आपसी लड़ाई प्रराम्भ हो गई । इस कारण भारत में उनका प्रचार कार्य प्रायः बन्द सा रहा । परन्तु यहाँ यह बात ध्यान रखने की हैं कि हिन्दुओं के जो गाँव के गाँव भ्रष्ट हो गये थे,उन्हे पुनःहिन्दु बनाने के लिए कोई आन्दोंलन शूरू नहीं किया गया और इस कारण वे लोग अपने को ईसाई ही कहलाते रहें। इस प्रकार हिन्दुओं से उनका रहा -सदा सम्बन्ध भी टूट गया।

ईसाई धर्म का प्रचार -आन्दोलन ,जो ईसाई पंथेा के आपसी झगड़ो के कारण प्रायः बन्द सा हो गया था,वह आगे चलकर पन्द्रहवीं शती में पुर्तगालियों के गोमांतक जीतने के बाद ही प्रारम्भ हो सका । उस समय उन्होने समुद्र -मार्ग से मालाबार में अपने कई केन्द्र खोले।

हिन्दुओं पर मनचाहे अत्याचार कर उन्हें ईसाई बनाने वाला सबसे प्रबल पादरी सेंट (संत) जेवियर था। वह सन्1540 में गोमान्तक आया। कई वर्ष तक ईसाई धर्म का पराकाष्ठापुर्वक प्रचार करने के बाद ,प्रचार -कार्य में रोड़ा सिद्ध होने वाली अड़चनो के सम्बन्ध में उसने पुर्तगाल के बादशाह को कई पत्र लिखे। उनमें से एक में वह लिखता हैं- ''हिन्दुस्थान में आपके शासकीय अधिकारी स्वयं ईसाई होते हुये भी अपने धर्म विस्तार की आज्ञाओं का उल्लंघन कर रहे हैं वे तो बस विलास में मग्न होकर जैसे भी बन सके लखपती बनने के जुगाड़ में लगे हुए हैं। पैसा ही उनका ईश्वर बन गया हैं। सच्ची ईश्वर सेवा,जिसमें हमने अपना जीवन लगा दिया हैं,उसमे वे थोड़ा भी सहयोग नहीं देते । हिन्दुस्थान में ईसाई -धर्म-प्रचार में सबसे बड़ी बाधा यहाँ के ब्राह्मण हैं वे हमारे प्रचार का आगे बढ़ने नहीं देते । हम हजारो हिन्दुओं को धर्मान्तरित करते हुए आगे बढ़ते हैं,किन्तु पीछे मुड़कर देखते हैं,तो ये ब्राह्मण उन्हें गुप्त रीति से मांडवी तट पर ले जाकर कहते हैं कि ''तुम इसमे स्नान करो,इस मंत्र का उच्चारण करो । इससे तुम ईसाई बनने के पाप से मुक्त हो जाओगे । इस प्रकार वे ब्राह्मण झाँसा देकर उन्हें फिर से शुद्ध कर हिन्दु बना लेते हैं। हम इन ब्राह्मणों पर धाक जमाने का प्रयास करते हैं किन्तु वे इसकी बिल्कुल परवाह नहीं करते और आपके शासकीय अधिकारी मेरे कहने के अनुसार उनको कठोर दण्ड भी नहीं देते हैं।

ईसाई का अत्याचार

सेंट जेवियर जैसे पादरियों के सतत् चिल्लाने बौखलाने से परेशान होकर पुर्तगाल के सम्राट ने अपने शासकीय अधिकारियों को बड़े कड़े आदेश भेजे-''यदि ईसाई धर्म प्रचारकों के कार्य के प्रति जरा भी दुर्लक्ष्य किया तो तुम्हारी सम्पूर्ण सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी। '' सेंट जेवियर ने अपने दूसरे पत्र में लिखा हैं-''हिन्दुओ को ईसाई बनाने का हमारा कार्य बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा हैं। जो हिन्दू ईसाई नही बनना चाहते हैं उन्हे सजा देते समय हम इतनी कठोरता बरतते हैं कि हमारे प्रचारकों (मिशनरियों) को देखते ही हिन्दुओं के गाँव-के-गाँव में भगदड़ मच जाती हैं। एक साधारण देहाती हिन्दू की तो बात ही क्या ,हमारे द्वारा पकड़वाकर जेल में डाले गये,हिन्दुओं के बड़-बड़े मठ -मन्दिरो के मठाधीशें ,आचार्यो और धनवान हिन्दुओं की जो मरम्मत होती हैं,उसके आतंक से अनेक स्थानो के हिन्दू -मन्दिरों के पुजारी अपनी -अपनी मूर्तियों को पल्लो में बाँधकर गांमान्तक के बाहर भाग खड़े होते हैं उनकी सारी सम्पत्ति हम छीन लते हैं मूर्तियाँ तोड़ डालते हैं,मन्दिर धराशायी कर देते हैं और हंटरो की मार से उनकी चमड़ी उधेड़ डालते हैं। अब हमें इस कार्य में बड़ी सफलता मिलने लगी हैं। अधिक क्या लिखूँ ,यदि ये ब्राह्मण मेरे रास्ते का काँटा न होते,तो मैं सारे हिन्दुस्थान में बहुत

शीघ्र ही ईसाई धर्म का विस्तार करने में सफल हो जाता।''इसके उपरान्त सेंट जेवियर के जाने के बाद भी उसके द्वारा किये गये अवर्णनीय अत्याचार अन्य सैकड़ो पुर्तगाली पादरियो द्वारा हिन्दु जनता पर किये जाते रहे। उन सबका हम स्थानाभाव के कारण उल्लेख न करने में विवश हैं।

उत्तर भारत के सभी प्रान्तों के हिन्दू समाज को केवल मुसलमानों के ही धार्मिक संकट तथा अत्याचारो का सामना करना पड़ा हैं। किन्तु ,विन्ध्यपर्वत के दक्षिण में रामेश्वर तक रहने वाले हिन्दुओं को लम्बे समय तक टिकी रहने वाली केवल पाँच दक्षिणी मुस्लिम सल्तनतो के ही प्राणघातक अत्याचारो को ही नहीं सहना पड़ा बल्कि क्रूरता में मुसलमानों से भी बढ़कर पुर्तगाली पादरियों के भी अत्याचार को सहना पड़ा हैं। जो उक्त हदयद्रावक वृतांत पढ़ना चाहते हों,उन्हें ''as hindus de goa republica portuguesa ''नामक ग्रन्थ देखना चाहिए । इसका अंग्रजी में अनुवाद हो चुका हैं। भारत में ईसाई धर्म में ईसाई धर्म -प्रचार के लिए पुर्तगालियोां द्वारा मुसलमानो को भी लजाने वाले हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये गए हैं,उनका विवरण कई छोटी -मोटी पुस्तको में दिया हैं। परन्तु उपर दिए दिए गए ग्रन्थ की विशेषता यह हैं कि वह _____ नामक पुर्तगााली सरकार के सुप्रीम हाईकोर्ट के न्यायाधीश द्वारा लिखा गया हैं, इसीलिए हमने इसको पढ़ने का अनुरोध किया हैं।

पुर्तगालियो में अपने इतिहास के अनुकूल -प्रतिकूल सब पत्रो ,वक्तव्यों तथा विवरणो को बड़े यत्न से सम्भालकर रखने की परम्परा एक अत्यन्त ईमानदारीपूर्ण आदत हैं। उनमें एक यह भी आदत हैं कि अध्ययन में रूचि लेने वाले शोधार्थियो को वे उस सामग्री को पढ़ने के लिए भी देते हैं।

आगे चलकर सीरियन और अन्य साधारण ईसाईयों के बीच उनके देश में हो रहे झगड़ो के कारण वैमनस्य बढ़ा। यूरोप के विविध ईसाइ 'Patonio Naronhva (पैटोनियो नरोन्हवा) महादय स्वयं पुर्तगाली थे इसलिए उस सब वृत्तान्तों को पूर्णरूप से अध्ययन करने में उन्हे कुछ भी कठिनाई नही थी । उस समय हिन्दुस्थान के पादरियेा और पुर्तगाल के बादशाह और रोम के ईसाई पोप के मूल पत्र -व्यवहार का भी अध्ययन कर उन न्यायाधीश महोदय ने यह ग्रंथ प्रणयन किया हैं। यह भी उक्त ग्रन्थ की एकमेवाद्वितीय विशेषता हैं। इस ग्रंन्थ के अतिरिक्त गोमान्तक में पहले भ्रष्ट होकर ईसाई बने पहले दस हजार से उपर हिन्दुओं को शुद्ध करने का महान कार्य करने वाले स्व श्री मसूरकर महाराज के निरिक्षण में मराठी में 'गोमान्तकालीन शुद्धीकरण चा इतिहास' नाम से एक ग्रंथ और लिखा गया हैं ,उसे भी अवश्य पढ़ना चाहिए ।

हम यह 'छह स्वर्णिम पृष्ठ' नामक ग्रंथ लिख रहे हैं । यह कोई हिन्दुस्थान का इतिहास नहीं हैं। यह तो उसकी समीक्षा हैं। इसलिए स्थानाभाव के कारण सब जानकारी यहाँ देना असम्भव हैं,फिर भी मुसलमानों के सिधं पर हुए आक्रमण से लेकर आगे सैकड़ो वर्ष तक हिन्दुओं का उनसे जो सशस्त्र आक्रमण और अभूतपूर्व धर्मयुद्ध चलता आया हैं,उसकी पर्याप्त चर्चा इस ग्रंथ के पिछले अध्याायों में की जा चुकी हैं।

रोटीबंदी ,पानीबंदी ,बेटाबंदी और विशेषतः शुद्धिबंदी आादि हमारी उस समय की मुर्खतापूर्ण अनेक रूढ़ियेां के घातक परिणाम हम पहले ही बता चुके हैं। इन पुर्तगालियेां के आगमन के बाद ईसाई राष्ट्रो से भी वैसा ही धर्मयुद्ध चलता रहा। उन्होंने भी हम पर वैसे ही छल -कपट और अत्याचार किए और हम भी अपनी रूढ़ियों से चिपके हुए स्वयं आत्माघात करते रहे। इन धर्मयुद्धो के सम्बन्ध में भी वही सारी चर्चा अक्षरशः सत्य सिद्ध होती हैं। यहा इतना ही कहना पर्याप्त होगा।

यहाँ पर यह भी ज्ञातव्य हैं कि इसी समय अरब ओार ईसाई राष्ट्रों ने दक्षिणी समुद्र पर अपनी सत्ता साम्रज्य पर भी अपनी सत्ता स्थापित कर इंडोचिन तक विस्तार में फैले हए हमारे हिन्दू-बौद्ध साम्राज्य पर भी राजकीय और धार्मिक आक्रमण कर वहाँ के करोड़ेा हिन्दुओं को धर्म -भ्रष्ट कर दिया। इन अत्याचारी शुत्रयों ने राज्य भी छीन लिए। इन कारणो से हिन्दुओं ने अपने पैरो में समुद्रबंदी की जो बेड़ी अपने हाथेा डाली ,इसका वर्णन हम ,समुद्र-यात्रा-बंदी कब और क्यों प्रारम्भ हुई ' के अन्तर्गत कर चुके हैं। समुद्र -यात्रा-बंदी के कारण हिन्दू राष्ट्र के केवल राजसत्ता और धर्मसता की ही हानि नहीं हुई ,बल्कि हिन्दुओं की विशाल सामुद्रिक दृष्टि की भी हानि हुई। हिन्दुओं का समस्त व्यापार ,उनका सम्पूर्ण नाविक दल नष्ट हो गया। नौका संचालन की धर्म प्रायः अपनी ही गलतियों के कारण 'कूपमण्डूक' बना । यदि कभी कोई साहसी हिन्दू इस 'कूप' से बाहर जाने का प्रयत्न करता तो पूर्व ,पश्चिम और दक्षिण समुद्रतट पर जाने की निषेधार्थक -'मत जाओ' नामक अनुलंघनीय तख्ती हिन्दुओं ने ही लगाकर रखी थी । यथा -

समुद्र यातुः स्वीकारः कलौ पंच विवर्जयेत ।।

इस अध्याय में हमने यहाँ तक हिन्दुओं पर मुसलमान,ईसाई आादि शत्रुओं द्वारा जो सशस्त्र और धार्मिक हमले किये गये उनका हिन्दुओं ने,कभाी -कभी ही क्यों न हो,किस प्रकार डट कर मुकाबला किया और हिन्दु-मुसलमानो के इस भंयकर और शताधिक -वर्षव्यापी महायुद्ध में हिन्दुओं ने मुसलमानो ने मुसलमानो पर सशस्त्र धार्मिक प्रत्याक्रमण कर किस

प्रकार अपने ऊपर हुए अत्याचारों का बदला लिया, इसका 'स्थालीपुलाकन्याय' से यत्किंचित वर्णन किया हैं।

सच पूछा जाय तो व्यक्तिगत और सामुहिक शुद्धि-सम्बन्धी धार्मिक मोर्चे पर हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों पर सशस्त्र जवाबी हमले का जो उपक्रम शंकराचार्य के समान विद्यारण्य,छत्रपति शिवाजी ,दुर्गादास राठौर और जोधपुर के महाराज जसवन्त सिंह आदि अन्य वीरों ने तथा रामानन्द ,श्री चैतन्य आादि संत-महंतो ने किया था,हिन्दु समाज को कार्यो सतत् करते हुए मुस्लिम स्त्री-पुरूषो को बलपूर्वक हिन्दु बनाने का धूम-धड़ाका,पुरानी रूढ़ियों को तिलांजलि देकर जारी रखते हुए इसे ही उस समय के हिन्दुओं का युग-धर्म बना डालना चाहिए था। फिर यह बात भी नहीं कि हिन्दू विभूति-पूजा को पसन्द न करते हों। हिन्दू समाज में प्रचालित अनेक पंथेा ,रूढियो और धार्मिक सिद्धान्तों को हिन्द समाज में प्रकट हुई विभूतियों ने ही पुरानी रूढ़ियों को त्याग कर, इन नये आचरणों को सदाचाार के रूप में हिन्दूधर्म में समाविष्ट किया था। वे अनुयायी अपने लिए उनका अनुशीलन भी करते रहते थे,परन्तु उन विभूतियों के तिरोधन के बाद विभूति-पूजा के उपासक होने पर उन विभूतियों द्वारा प्रदर्तित शुद्धिकरण,परधर्मियों पर धार्मिक आक्रमण आादि को हिन्दू समाज ने जारी न रखा। हिन्दू-मन्दिरो,हिन्दू-स्त्री-पूरूषों पर हुए अत्याचारों का मुसलमानों के ही ढंग से उनकी मस्जिदों को गिराकर अथवा मुसलमानों को काटकर उनकी स्त्रियों को बलपूर्वक हिन्दू बनाकर बदला लेना बन्द कर दिया । इधर विभूतियाँ गयी और उनके द्वारा प्रतिपादित आचरणो का 'नवीन युगधर्म'भी हिन्दू समाज से चला गया।

इतना ही क्यों अन्य कार्यो के लिए चैतन्य महापुभु का पंथ अभी भी जीवित हैं और उनके अनुयायी उनके 'भक्ति-विषय 'आादि ग्रन्थों का निरन्तंर पाठ भी करते रहते हैं । परन्तु इस महापुरूष ने मुसलमानेा से जो सशस्त्र बदला लिया, उसका उल्लेख तक इस ग्रन्थ में नहीं हैं। उनके द्वारा मुसलमानेा पर हुए सशस्त्र धार्मिक आक्रमण अथवा बड़ी -बड़ी शुद्धियो की गाथा कहने वाला एक आध वीर-काव्य भी उस समय के वीर भाटों अथवा चारणों द्वारा रचा गया प्राप्त नहीं होता। हिन्दुओं के बहुजन समाज को इतनी भी आवश्यकता प्रतीत हुई कि उन स्मरणीय प्रंसगो की मौखिक चर्चा ही परम्परानुसार जारी रखी जाती।

कारण ,आधुनिक हिन्दू समाज के मन का स्थायी भाव सहिष्णुता अर्थात् और अधिक स्पष्ट शब्दो में कहना हो तो निर्लज्जता बन गया हैं।

इस अध्याय में हिन्दुओं द्वारा मुसलमानों पर यदा-कदा किये गये प्रत्याक्रमणों की जो घटनाएँ हमने दी हैं,वे वस्तुतःहिन्दू-मुसलमान महायुद्ध के प्रदीर्घकाल के विचार से बिलकुल अपवादात्मक ही थीं-मानेा कोई फटे हुए आसमान से

थिंगरा लगाने का प्रयास करें।परन्तु हिन्दू राष्ट्र की वीरता को शोभा देने लायक कुछ ऐसे पराक्रम हिन्दुओं ने अवश्य दिखाये, जिसके कारण हिन्दुओं का पूर्ण रूप से विनाश नहीं हुआ। अवसर आने पर हिन्दू भी धार्मिक बदला लेने में सक्षम है-इस बात की धाक मुसलिम शत्रु पर बराबर जमी रही। शत्रु इससे घबराता भी रहता था। इन अपवादात्मक हिन्दू वीरो की तरह यदि सारी हिन्दू जाति उसी रणनीति का अवलम्बन करती तो उस कालखण्ड में इस देश में कोई मुसलमान-मुसलमान कहलाकर रह नहीं सकता था।

किन्तु ,शेष हिन्दू वैसा करने के लिए क्यों सिद्ध नहीं हुए ? वे क्यों डरे? अथवा क्यों डरें? अथवा उन्हें क्यों लगा कि मुसलमानों पर सशस्त्र जवाबी हमला करना हिन्दू धर्म के विपरीत हैं और शुद्धीबंदी,सिंधुबंन्दी,रोटीबंन्दी इत्यादि बेड़िया ही हिन्दू धर्म के सच्चे तथा शिष्ट आचरण हैं। इन प्रश्नो के उत्तर में हिन्दुओं द्वारा मुसलमानो पर जवाबी हमला हिन्दूहित के लिए इष्ट नहीं होगा -इसका समर्थन तथा प्रतिपादन करने वालो का जवाब यही था कि मुसलमानों के इस प्रकार बार -बार के भयंकर आक्रमणों का यदि हिन्दू राजाओं ने जवाबी हमला कर भ्रष्ट हुए अपने हिन्दू भाइयों को फिर से शुद्ध करके हिन्दू बना लिया होता अथवा जैसा कि मेरा मत है(लेखक का मत) उसके अनुसार सशस्त्र धार्मिक आक्रमण कर मुस्लिम स्त्री-पुरूषों को बलपूर्वक हिन्दू बना लिया होता तो मुसलमान और अधिक चिढ़ जाते और अपने बार -बार के आक्रमणों में हिन्दुओं की और अधिक उर्ग दुर्दशा करते। इस डर से हिन्दू लोगों ने आपद्धर्म,के रूप में निरूपाय होकर शुद्धिबंदी,प्रत्याचारबंदी,रोटीबंदी,बेटीबंदी,सिन्धुबंदी सद्गुण विकृति इत्यादि शरणागति के अनुरूप आचरण का अवलम्बन कियाा। अब इन सब बनावटी तर्को को समाप्त करने के लिए तथा उपरिलिखित हमारे अनेक उल्लेखो ,संदर्भो आदि मतों को दृढ़ता प्रदान करने वाली एक अंतिम घटना का उल्लेख आगे किया जाएगा। जिससे हमारा यह निर्णय कि ''हिन्दुओं में सशस्त्र धार्मिक प्रत्याक्रमण की शाक्ति तो थी,परन्तु उसकी इच्छा का अभाव था।'' निर्विवाद रूप से सिद्ध ह्येगा। वह घटना टीपू सुल्तान का उच्छेद करने वाले मराठों द्वारा मुसलमानों से किए हुए सघर्ष की हैं।

सातवाँ अध्याय

हिन्दूप्रपीड़क क्रूरकर्मा टीपू सुल्तान

जिस समय मराठा साम्राज्य का विस्तार बढ़ा और स्थिति यहाँ तक पहुँचा कि मराठो ने अपने पराक्रम से दिल्ली के मुगल साम्राज्य को सचमुच में ( ) उलट डाला ओर हिन्दुओं की राजसत्ता हिन्दुस्तान भर में इतनी प्रबल हो गायी कि उसका परिणामकारी विरोध कर सकने वाली -हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक -कोई भी मुस्लिम सत्ता न रही ,ऐसे समय में भी ,मैसूर के एक छोटे से हिन्दू रजवाड़े में राजा के अधीन रहकर भी हैदरअली नामक मुसलमान अपने अधिकार के बल पर बढ़ते -बढ़ते सेना में एक महत्वपूर्ण पद तक पहुँच गया था।स्वय हिन्दू समाज की सदा से सब धर्मो को समान मानने की उदारतापूर्ण ढ़ील-ढाल और अव्यवस्था की नीति के कारण,जिन मुसलमानों पर इतना विश्वास किया उन्हें ऊचाँ बढ़ाया ,उन्ही मुसलमानों ने उन हिन्दू राजाओं का कितना घात किया इसकी जानकारी होते हुए भी मैसूर के इस राजा ने हैदरअली के समान कटोर और जंगली मुसलमानों के हाथों में अपनी सेना का अधिपत्य सौप दिया । परिणाम जो होना था। वही हुआ। अन्त में हैदर ने उस हिन्दू राजा को हटाकर सारी राज्यसत्ता पर स्वयं अधिकार कर लिया । उसने मराठों पर भी चढ़ाई की। किन्तु उन्होंने युद्धक्षेत्र में इसकी नस-नाड़ी ठंडी होने तक पीट-पीट कर इतनी मरम्मत की,जिससे वह आगे कदम न बढ़ा सका। एक बार इसने अंग्रेजो पर भी सफलतापूर्वक धावा बोला था। यहाँ हैदर के इन कृत्यों का प्रस्तुत विषय से कोई सम्बन्ध न होने के कारण इतना ही बताना पर्याप्त हैं कि सन्1862 में हैदर की मृत्यु के बाद उसी के समान पराक्रमी उसका पुत्र टीपू सुल्तान उस हिन्दू राज्य का अधीश्वर बना।

सत्ता हाथ में आते ही टीपू ने मूल हिन्दू राजा का नाम -गाँव झाड़ -पोंछकर साफ करते हुए स्वयं को मैसूर के स्वंय को मैसूर के स्वतंत्र मुस्लिम राज्य का सुल्तान घोषित कर दिया। मुस्लिम परम्परा के अनुसार उस किसी भी मुस्लिम सुल्तान का जो प्रमुख कर्त्तव्य समझा जाता था,उसके अनुसार टीपू ने एक आम दरबार करवा कर घोषणा की-''मैं सभी काफिरों को मुसलमान बनाकर ही रहूँगा।''और फिर तुरंत ही सब हिन्दुओं को मुसलमान बनने का फरमान भी जारी कर दिया। उसने अपने गाँव-गाँव के मुस्लिम अधिकारियों के पास लिखित सूचना भिजवा दी कि ''सभी हिन्दुओं को इस्लाम धर्म की दीक्षा दो। जो हिन्दू स्वेच्छा से मुसलमान न बनें उन्हें बलपूर्वक मुसलमान बनाओं और नहीं तो पुरूषेां को कत्ल कर हिन्दू -स्त्रियों को पकड़ों और उन्हें रखैल या दासी बनाकर मुसलमानों को बाँट दो।''

भ्रष्टीकरण का यह अघोर ताण्डव टीपू ने इतने भारी पैमाने पर और इस तीव्रता से चलाया कि मैसूर के उस राज्य के सारे हिन्दू समाज में अभूतपूर्व एवं अवर्णनीय हाहाकार मच गया। टीपू की न केवल सैनिक टुकड़ियों ने अपितु गाँव के मुल्ला मौलवियों ने गाँव के आवारा बदमाशेां की टोलियाँ की टोलियाँ जमाकर प्रतिकार करने में असहाय,अक्षम,निरस्त्र,अबाल-वृद्ध हिन्दुओं को घेर -घेर कर मारा और भ्रष्ट किया । आगे चलकर तो स्वयं टीपू ने मालावार पर धावा बोलकर उसने मराठो पर भी चढ़ाई कर दी । धाड़वार से नीचे त्रावणकोर तक फैले लाखों हिन्दू स्त्री-पुरूषों में टीपू की सैनिक टूकड़ियों तथा गाँव-गाँव के मुस्लिम गुण्डों और मुल्ला -मौलवियों ने बड़वानल के समान अकस्मात् भ्रष्टीकरण की आग फैलाकर त्राहि-त्राहि मचा दी।

टीपू के सशस्त्र हमले का सामना करने में असमर्थ सभी जातियों एंव पंथो के सैकड़ो हिन्दू स्त्री-पुरूषों ने अन्य कोई उपाय न देखकर ,मुस्लिम सैनिको के चंगुल में फँसने के पूर्व अपने बाल-बच्चों को लेकर धर्म -रक्षा के विचार

से कृष्णा,तुंगभद्रा आादि बड़ी-बड़ी नदियों में छलांग लगाकर प्राण दे दिए। सैकड़ो की संख्या में हिन्दू स्त्री-पुरूषों ने धधकती अग्नि में प्रवेश किया,परन्तु धर्म त्यागकर मुसलमान होना स्वीकार नहीं किया।

टीपू की उन्मत घोषणा

अपने राक्षसी कर्म, विजयी आक्रमण और इस कारण हुई हिन्दुओं की दुर्दशा में आनन्द मनाते हुए एक बार टीपू ने उन्मत्ता से फूलकर भरे दरबार में घोषणा की-'काफिर हिन्दुओं को सामुदायिक रूप से मुसलमान बनाने में मेरा सशस्त्र आक्रमण अपेक्षा से अधिक सफल हुआ हैं। एक दिन तो मेरे राज्य में चौबीस घण्टे के भी पचास हजार हिन्दुओं को भ्रष्ट किया गया।आज की तारीख से पहले इतना बड़ा काम किसी सुल्तान से न हुआ होगाः परन्तु आज खुदा के फजल से इस्लाम के प्रचार और काफिरों के खात्मे का यह महान कार्य मैं कर सका।

''काफिर हिन्दुओ के खात्मे का अपना यह महान् कार्य'' बड़ी तेजी एवं तत्परता से पूरा करने के लिए उस धर्मोन्मत्त टीपू सुल्तान ने आततायी कृत्यों में बड़े-चढ़े कुछ चुनिन्दे सिपाहियों की एक सेना ही बनाई थी । उसमें उसने अत्यन्त कट्टर तथा क्रूर सैकड़ो तरूणों कों छाँट-छाँट कर शामिल किया था। इसे वह प्यार से फरजन्दों(पुत्रो) की सेना कहकर पुकारता था।

हिन्दू स्त्री-पुरूषो को बलात् भ्रष्ट करने,उन्हे लूटने,उनके घर बार जलाकर राख करने में जो हिन्दू प्रतिकार करें उन्हें यातनाएँ देकर कत्ल करने में उसकी इस लाड़ -प्यार की सेना के जवान जो 'नामवरी'कमाते थे,उसके बदले में वह उन्हें पारितोषिक के रूप में स्थान-स्थान से भगाई हुई सुन्दर से सुन्दर और जवान-से-जवान युवतियाँ चुनकर यथारूचि बाँटता था।

टीपू सुल्तान के इस इस्लामी प्रचार और पराक्रम के कारण हिन्दुस्थान का सारा मुस्लिम संसार उसके प्रति कृतज्ञता के भार से मानो झुक गया। मुस्लमानों की और से उसे सुल्तान ,गाजी इस्लाम का कर्मवीर आदि पदवियाँ दी गयी। हिन्दुस्थान मुस्लमानों की और से नहीं, अपितु **ठेठ तुर्किस्तान के खलीफा की और से भी उसे वही मान मिला । अर्थात् हिन्दू धर्मावलम्बियों पर टीपू द्वारा किये गये धर्मोन्मादमय अत्याचारों में इस प्रकार विश्व का 'समस्त 'मुस्लिम जगत् हिस्सेदार बना और विशेषकर कर्नाटक से लगाकर त्रावणकोर तक का वह मुस्लिम समाज जिसने टीपू के कन्धें से कन्धा लगाकर उस अत्याचार में प्रत्यक्ष हिस्सा बैटाया था,स्त्री-पुरूषों सहित टीपू के समान ही हिन्दुओं की दृष्टि में दण्ड का भागी था।**

पूना में इसकी प्रतिक्रिया

जिस समय हिन्दुओं को बलपूर्वक और सामुदायिक रूप से मुसलमान बनाने का अभियान प्रारम्भ हुआ,उसी समय वहाँ के हिन्दू समाज में उठे कोहराम और आर्तनाद का सुनकर हिन्दू धर्म-रक्षा का बाना धारण करने वाले मराठा साम्राज्य की राजधानी पूना में क्रोध की लहर फैल गई और मैसूर के इस नये महिषासुर का मर्दन करने के लिए उस पर चढ़ाई का निश्चय हुआ। पशवा के मुख्य फड़नवीस नाना के दक्षिणी अंचल के अपने सभी मरहठा सरदारों को दिशाओं से टीपू के राज्य पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी।

टीपू के साथ युद्ध

मराठी सेनाएँ उसके राज्य पर चढ़ाई करने चल पड़ी हैं,यह खबर पाते ही टीपू गुस्से से आगबबूला हो गया।'नरगुद'और 'कित्तुर' के दो बिल्कुल छोटे-छोटे मराठी इलाके उसकी राज्य की सीमा से लगे थे, किन्तु वे मराठी राज्य की मुख्य सीमा से दूर थे। मराठी सेना पहुचने के पूर्व ही उसने इन पर हमला बोल दिया।

वैसे तो टीपू सभी हिन्दुओं से खार खाये बैठा था। किन्तु हिन्दू समाज में हिन्दुत्व का जाज्वल्य अभियान संचारित कर उन्हें मुसलमानो से सचेत रहने की प्रेरणा देने वाले ब्राह्मण वर्ग से वह विषेश रूप से जलता रहता था । दूसरो की अपेक्षा वह ब्राह्मणों के साथ अधिकतम कूरता का व्यवहार करता था। इतिहासाचार्य सरदेसाई भी लिखते हैं-

Brahmin's were singled out special Indignities by Tippu.

नरगुंद और कित्तुर दोनो ही स्थानो के अधीश्वर ब्राह्मण थे और फिर तुरन्त अधीन होने की टीपू की माँग उन्होंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार की थी । इससे चिढ़कर ठीपू ने सबसे पहले नरगुंद पर ही प्रबल सेना लेकर धावा बोल दिया । वहाँ के अधीश्वर 'भावे' वीरोचित भाव से लड़े ,परन्तु पूना की सहायता समय पर न पहुंच पाने के कारण उस छोटी -सी सेना को टीपू ने तुरन्त ही हरा दिया। नरंगुद नगर का पतन होते ही उसमें आग लगा दी और लूटमार करते हुए वह सीधा उस राज्य के बाड़े में जा घुसा तथा अधीश्वर श्री भावे और उनके सेनापति श्री पेठे को पकड़कर बेड़ियाँ ठोक दी। फिर उनके सभी सम्बन्धियों को यातनाए दी ।उनके अंतःपुर में घुसकर वहाँ की राजस्त्रियों टीपू ने स्वंय और अपने मुस्लिम हस्तकों से जो विऊबना करवाई उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । सभी राजस्त्रियों को नाना प्रकार के कलेश देते हुए अन्त में तरूण युवतियों और बालाओं पर तरह--तरह क अत्याचार किये गये। राजघराने की सर्वोत्तम ,सुन्दरतम तरूणियों को टीपू ने अपने जनानखाने में बन्द किया और लौटते समय उन्हें अपने साथ लेता भी गया। अपनी बहू-बेटियों की यह दुर्गति अपनी आखो के सामने होती देखकर श्री पेठे की वृद्ध माता का हद्वय यातना के कारण फट पड़ा और उन्होने वही प्राण त्याग दिये। टीपू की सेना ने भी नरगुंद नगर के हिन्दू स्त्री-पुरूषो की जितनी फजीहत हो सकती थी उतनी की। हिन्दुओं के धनी लिंगायत घरानों से लेकर सामान्य हिन्दू के घर तक उन्होने लूट डाले। उनके घर -बार जलाकर राख करते हुए सैकड़ो हिन्दू स्त्री-पुरूषों को गुलाम बना कर टीपू अपने साथ लेता गया।

इस बीच मराठों की मुख्य सेना कर्नाटक में टीपू द्वारा जीते हुए प्रेदेशो और नाको को फिर से विजित करती हुई तेजी के साथ आगे बढ़ती आ रही थी। चूँकि इस युद्ध की अन्य घटनाओं का उल्लेख आवश्यक नहीं ,इसलिए उन्हें छोड़ना ही ठीक होगा । तथापि इतना कहना पर्याप्त होगा कि निदान सरदार पटवर्धन ,फड़के,बेहरे,होल्कर ,भोसले इत्यादि की मराठी सेनाओं ने स्थान -स्थान की मुस्लिम सेनाओं को मार मारकर पछाड़ते हुए सारा का सारा का सारा कर्नाटक प्रांत जीत लिया और टीपू का मैसूर तक पीछा किया। आखिर वह घिर गया। इसी समय अंग्रेजो ने टीपू को फँसा देखकर मौका साधा और वे भी टीपू पर टूट पड़े । मराठो की तीखी तलवारो के वार टीपू की उस धर्मोन्मादी मुस्लिम सेना की पीठ पर जैसे बरसने लगे,वैसे -वैसे उस शैतान का मुस्लिम धर्मोन्माद उतरने लगा। उसका दम उखडता गया और इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि फिर वही हिन्दू-धर्म द्वेष्टा टीपू हिन्दू देवी-देवताओं की माला जपने लगा।

देवी-देवताओं का भक्त टीपू! अपने धार्मिक उत्पीड़न से त्रस्त हिन्दुओं को फिर से अपनी ओर मिलाने के लिए क्यों न हो, टीपू ने एक का एक हिन्दू मठ-मन्दिरों को दान देना आरम्भ कर दिया। मुसलमानो द्वारा तोड़कर गिराय गये मन्दिरो में उसने नई-नई मूर्तियों प्राण प्रर्तिष्टा भी करवाई । युद्ध में जय प्राप्ति के लिए उसने ब्राह्मण द्वारा मन्दिरों में पूजा-प्रार्थना भी करवाई और जिस ब्राह्मण वर्ग का वह सर्वाधिक द्वेषी था,उन्ही को प्रसन्न करने के लिए उसने दान-दक्षिणा के बड़े -बड़े आयोजन किये,अनुष्ठान आरम्भ किये। स्वयं शंकराचार्य महाराज का बड़ा सम्मान किया और उनसे राज्य पर आए संकट को टालने के लिए आर्शिवाद की याचना की । शंकराचार्य ने भी उसे समारोह के साथ मनचाहा आर्शिवाद दिया। स्थानाभाव के कारण केवल एक बात और कहना पर्याप्त होगा कि कांची क्षेत्र के प्रसिद्ध हिन्दू देवता की रथ यात्रा के समय स्वंय टीपू सुल्तान उपस्थित हुआ और हिन्दुओं के रथ के सामने अन्य भक्तों में सम्मलित हो,उस शोभा यात्रा में चलता रहा । उसने अपने हाथों से आतिशबाजी सुलगाई और दीपोत्सव अपने खर्चे से पूरा किया।

कहते हैं कि जिस देवता के हाथ में शत्रु का नाश करने वाला खड्ग खिचां रहता हैं,दैत्य भी उस देवता की उपासना करने लगते हैं।

परंतु उस क्रूरकर्मा दुष्ट टीपू को अकस्मात् आये दारूण दुःख से बचाने के लिए न देवता आगे आये,न दैत्य ही।

अंत में दो-तीन आक्रमणों मे ही उसका सारा राज्य मराठों और अंग्रेजो ने जीत लिया। आगे चलकर टीपू मारा गया। उसके राज्य का बँटवारा हुआ। त्रावणकोर के हिन्दू राजा को ,टीपू द्वारा जीता गया उसका अपना भाग वापस मिला। मैसूर के जिस हिन्दू राजघराने को पदच्युत कर टीपू सुल्तान बन वैठा था, उसी राजवंश को पुनः स्थापित किया गया । शेष राज्य का कुछ भाग अंग्रेजो को मिला और कर्नाटक से लगाकर तुंगभद्रा तक का टीपू से जीता हुआ सारा विस्तृत प्रदेश मराठों ने अपने राज्य में मिला लिया। अपने को सुल्तान कहलवाने के लिए टीपू ने जिन हिन्दू राज्यों को समाप्त करने की प्रतिज्ञा की थी, वे सारे हिन्दू राज्य अपने-अपने स्थान पर फिर से प्रतिष्ठित हो गये। इस युद्ध में टीपू का सारा मुस्लिम राज्य नष्ट हो गया। सन् 1850 के आसपास कुल बीस बर्ष तक टीपू के नेतृत्व में दक्षिण के मुसलमानों का जो सशस्त्र सामुदायिक उत्थान हुआ था और हिन्दू -द्रोह का जो प्रलयकांरी तांडव मचा था,उसका राजकीय और समरांगणीय क्षेत्र में पूरी तौर पर धुआँ उड़ाने में हिन्दू विजयी सिद्ध हुए। किन्तु धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में मुसलमान ही विजयी हुए।

कारण यह हैं कि इस युद्ध में हिन्दू धर्म का उच्छेद करने के लिए मुसलमानेां ने जो धार्मिक और सामाजिक हमला किया था, छल -बल से जो लाखो हिन्दुओं को भ्रष्ट किया था, हजाारेा हिन्दू स्त्रियों को पकडकर जनानखानों में कैद कर हिन्दूं राष्ट्र और हिंन्दू पौरूष का मान भंग किया था और जिसके कारण मुसलमानी धर्म, समाज -सत्ता और उनका संख्यावल निरंतर अबाध गति से बढ़ता जाता था, उसका धुँआ उड़ाने और उनका -सामाजिक अपमान का बदला लेने के लिए तथा मुसलमान स्त्री पुरूषों द्वारा किये गये अघोर अपराधो का उतना ही कठोर दण्ड देने के लिए,हिन्दू -धर्म रक्षा का बाना धारण करने वाले मराठों ने कुछ नहीं किया। मराठी सेना के विजयी वीरो ने इस्लाम पर एक भी सशस्त्र आक्रमण नहीं किया । इस मामले में एक तिनका भी इधर से उधर नहीं रखा।

प्रत्याक्रमण होने पर परिणाम

टीपू द्वारा स्थापित मुसलमानों राजसत्ता तो मराठों के प्रत्याघात से चकनाचूर हो गयी। किन्तु उसी टीपू द्वारा हिन्दुओं पर लादी गयी धर्म -सत्ता प्रत्याघात के अभाव में उत्तरोत्तर अधिक बलवती होती गयी । कोई दो-तीन लाख हिन्दू -स्त्री पुरूष ,भ्रष्ट किये गये बालक -बालिकाए,मुसलमानी समाज के फन्दे में,उनकी दासता में,उनके जनानखानो में सड़ते रहे,कुचले जाते रहे।

यह सब कैसे होता रहा यह पहले बताया जा चुका हैा बलपूर्वक भ्रष्ट किये गये उन स्त्री -पुरूषेां की संतती शुद्ध कर तुरन्त हिन्दू न बना लेने के कारण मुस्लिम संस्कारो में पलकर ,पीढ़ी दक्षिण में हिन्दू -धर्म -शत्रुओं की सख्या बढ़ती चली गई और वे हिन्दू-धर्म एंव हिन्दू राष्ट्र के कट्टर शत्रु बनते गये । इन भ्रष्ट हुए हिन्दुओं की आगे की पीढ़ियों में शुद्ध होकर पुनः हिन्दू बनने की इच्छा तो दूर रही वे तो ईसप की कथा की दुमकटी लोमड़ी के समान अन्य हिन्दुओं को भी अपने जैसा बनाया जाय इसको अपना धर्म-कर्त्तव्य समझने लगीं। उनकी यह आसुरी आकाशां अधिकाधिक बढती ही गई।

धार्मिक आक्रमण की नितान्त आवश्यकता

परन्तु यदि राजकीय प्रत्याक्रमण की सफलता के साथ -साथ मराठों ने मुसलमानों पर तुरन्त धार्मिक आक्रमण किया होता तो टीपू के उस युद्ध में केवल चार -पाँच पूर्व मुसलमान बने दो -तीन लाख हिन्दू ''आओ'' कहते ही फिर से हिन्दू

धर्म और अपने कुटुम्ब में प्रेम -विह्वल होकर लौट आये होते । अभी चार -पाँच वर्ष पूर्व ही जिस हिन्दू धर्म और जिन माता -पिता ,बन्धु ,पुत्र -पुत्री आदि से वे विलग हुए थे,उन प्रियजनो की माया-ममता का स्मरण कर क्या बरबस उनके नेत्र भर न आते होंगे ,ऐसे समय उन हिन्दू भाइयों को शुद्ध कर फिर से हिन्दू राष्ट्र में समाविष्ट करना कितनी सहज बात होती।

और फिर उसी समय टीपू की मुस्लिम सल्तनत को दफनाकर सरदार पटवर्धन ,होल्कर आदि एक -से -एक बढ़कर मराठा सेनापतियों की विजयी घुड़सवार सेनाएँ अपने-अपने रणक्षेत्रो से महाराष्ट्र की ओर 'हर -हर महादेव' का रणघोष करती ,भगवाध्वज लहराती तथा विजय दुंदभि बजाती हुई जिन नगरों और छोटे-छोटे कस्बों से होकर गुजरती थी,उन्हीं नगरो, कस्बो ,ग्रामों में अनेक स्थानो पर समाज में बलात् रोक रखे गये थे। खासकर जिन हजारो हिन्दू स्त्रियों को मुसलमानी हमले के समय भगाकर अपनी रखैल -दासी बनाकर धरो में कैद रखा गया था,उनमे से अनेक पतिता, दुःखिता हिन्दू कन्याएँ, कांताए उन नगरों,कस्बो ,ग्रामो की हवेलियो से लेकर गाँव-गाँव में फैली हुई मुसलमानों की अनेक झोपड़ियों तक में दबाकर त्रस्त की जा रही थी। 'हिन्दुओं की विजय हुई और मुस्लिम राज्य का सत्यानाश'-इस खबर के कानो में पड़ते -न -पड़ते हिन्दु वीरों की लौटती हुई विजयी सेनाएँ अपने ग्रम से होकर जा रही हैं,यह उन वीरों की 'हर-हर महादेव' की विजय घोषणा से तुरन्त ही उनकी समझ में आ गया होगा।

और वे मुसलमानी जनानखानों की खिड़कियों,द्वारा और झोपड़ियों की रंध्रों से झाँकने के लिए आ डटी होंगी। जब उन हिन्दू सैनिकों की यह विजय शोभा यात्रा समीप आई होंगी, तब हमारी उन हजारों माँ-बहिनों के हृदय में ऐसी आकांशा स्वभाविक रूप से जगी हेागी-लो वे आये। हमारे-मेरे हिन्दू धर्म के भाई-इन अत्याचारी मुसलमानों की छाती रौंदते हुए आखिर हमारे छुटकारे को आ ही पहुँचे। और कभी-कभी तो उस कैद मे बंद महिलाओं में से किन्हीं-किन्हीं के सगे बाप ,भाई ,पति पड़ोसी आदि भी उस विजय-वाहिनी में शान से गरजकर जाते हुए उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिये होगे।

यदि केवल मन में ही विचार आया होता तो?

उस समय गाँव-गाँव में से संचलन करती जा रही विभिन्न विजयी हिन्दू सेनाओं के मन में विचार -मात्र भी आया होता तो टीपू से युद्ध के काल में मुसलमानो के बंदीखानो में हुई हजारों हिन्दू अबलाओं को रास्ते चलते सफलातापूर्वक मुक्त कराया जा सकता था।

कारण उस विजयी हिन्दू -दल के सामने खड़ा हो सके,इतना सार्म्थय और धैर्य ,उस समय किसी भी मुस्लिम अथवा मुस्लिम समूह में शेष नहीं था। मराठों की सेना के आने का समाचार सुनते ही नगर-नगर और गाँव-गाँव के मुल्ला मौलवी और गुण्डे अपने प्राणेा के भय से जहाँ-तहाँ अपने को छिपाने की परेशानी में फँस जाते थे। यदि उन हिन्दू सैनिक -सूरमाओं की रण -गर्जना के साथ आश्वासनयुक्त यह आवाज भी लगाई जाती कि 'मुसलमानों के घरो में बहनों बाहर निकल आओं। हम तुम्हारी रक्षा करेगें। तुम्हें मुक्त कर तुम्हारें घर तक पहुचाने के लिए हम तुम्हारें हिन्दू धर्म भाई तुम्हारे दरवाजे खड़े हैं। जो कोई मुसलमान व्यक्ति तुम्हारा रास्ता रोकेगा वह अपनी जान से हाथ धो बेठेगा ,फिर चाहे वह मुसलमान स्त्री हो या पुरूष ,उसी प्रकार मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये पुरूषों से भी यदि कहा गया होता -''हे! हिन्दू पुरूषों ,जहाँ कही भी हो यहाँ आकर हमारी सेना में मिल जाओं । हिन्दू धर्म के इस भगवाध्वज के नीचे आते ही,यह विजयी हिन्दू खड्ग तुम्हारी सब तरह से पूरी रक्षा करेगा। '' उपर्युक्त आह्वान सुनते ही उस चार -पाँच वर्ष में मुसलमान बने और उत्सुक्ता से मुक्तता की राह देखने वाले उन गाँवो के सब भ्रष्ट हिन्दू भाई -माँ बहने आनन्द के साथ स्वतः ही

उस सैनिक विभाग में आकर मिल गये होते। उन्हें बड़ी सरलतापूर्वक शुद्ध करके हिन्दू धर्म में पुनः वापस लिया जा सकता था और टीपू के युद्ध मुसलमानों को मिली विजय की भी नाक कट जाती।

शुद्धि का विचार ही मन में नहीं आया

किन्तु मराठा सैनिको सेनापतियों ,सनापतियों,सरदारों,शंकराचार्य,स्वंय पूना के पेशवाओं अथवा सतारा -कोल्हापुर के छत्रपतियों -किसी के भी मन में यह सहज शुद्धिकरण की बात नहीं आई। मुसलमान राक्षसों के बन्दीखाने में पड़ी हजारों की संख्या में-अपनी माँ बहनों की और जरा भी घ्यान न देते हुए ,उन्हे वैसा ही तड़पता छोड़ आगे बढ़ जाने में किसी को शर्म नहीं आई।

मुसलमानों को राजकीय और रणंगणीय मोर्चे पर पछाड़कर विजय के नगाड़े पीटते हुए तथा शंख फूँकते हुए वे सैनिक टुकड़ियाँ गाँवो में जैसे घुसी थी,वैसे ही कुछ न करते हुए अपने शिविरों में वापस चली गई। लगभग उन दो-लाख हिन्दू स्त्री -पुरूषो में से एक को भी उन्होंने शत्रु के पंजे से छुड़ाकर फिर से हिन्दू धर्म में नहीं लिया।

फलतः मुसलमानों की झोपड़ियों के द्वार से लगी जो हजारों माँ -बहने तथा बालिकाएँ 'अब हमारी ये सशस्त्र हिन्दू विजयी सेनाएँ हमें मुसलमानों की इन नरकतुल्य कोठरियों से मुक्त करेगी।'-की आशा लगाये थी,उन्होंने जब देखा कि 'वे तो जैसे आए थे,वैसे ही चले गये। अरे!हम पर उन्हें बिल्कुल दया नहीं आई, हमें मुक्त करना तो दूर किसी ने हमसे जान-पहचान भी नहीं की।' वे बिलख पड़ी। उनकी आशाएँ नष्ट हो गई। वे फिर से विवश होकर मुसलमानों के बन्दीवास में चली गई। शत्रु की संतति बढ़ाते हुए मरते दम तक वही कुचली -मसली जाती रही।

उसी तरह उपर बताये अनुसार ,उन गाँवो के छिपे हुए मुल्ला -मौलवी ,उनके चेले-चांटे और गुंडे हिन्दुओं की विजय वाहिनियों के चले जाने पर सब अपने घरो से बाहर निकलते और देखते कि हिन्दू राज्य अधिकारी अथवा सेनाएँ हिन्दुओं पर किये धार्मिक अत्याचारों के अपराधियों को कोई दण्ड नहीं देते तो फिर अत्याचारी मुसलमान घर से बाहर आकर मूँछो पर ताव देने लगते और इतना ही क्यों हिन्दुओं की बलपूर्वक अपहृत हजारों स्त्रियों और लूट के माल को बिल्कुल वैध रीति से अपनी सम्पत्ति मानकर उपयोग करने लगते। ऐसी भी घटनाएँ होती थी कि चुपचाप जीवन भर उन्हें मुसलमान की रखैल अथवा बीबी बनी देखते रहने को विवश हो जाना पड़ता था। किन्तु वह गाँव हिन्दू राजा के अधिपत्य में आया हुआ होने पर भी हिन्दू राज्याधिकारियों ने अपनी बहू-बेटियों को मुसलमानों के हाथों से कभी छुड़ाया हेा ऐसे उदाहरण देखने को नहीं मिलते । कारण,कि सैकड़ो वर्षो से वैसे आपत्धर्म की आदत पड़ जाने के कारण वे अपमानास्पद दृश्य मानों कुछ विशेंष हुआ ही नहीं -ऐसी निर्लज्ज निर्विकारता से देखते रहने की यह एक सामुदायिक आदत ही बन गई थी। समाज में जिस बात को देखते रहने की यह एक मानता ऐसी निर्लज्जता पर किसी को लाज भी नहीं लगती। केवल एक शुद्धिबन्दी की विष बाधा के कारण सारे हिन्दू समाज का इस प्रसगं में ऐसा बुद्धिनाश हो गया था।

इसका लिखित प्रमाण

टीपू से हुए मराठों के युद्ध का इतिहास अब बहुत विस्तृत रूप से उपलब्ध हो गया हैं। मार्शमैन के समान अंग्रेज ,इतिहासकारों,हमारे इतिहासचार्य सर देसाई जैसे विख्यात लेखकों के ग्रन्थ, मलेट आदि कूटनीतिज्ञों एंव राजपूतो के मूल पत्र व्यवहार इतिहास संशेाधक राजवाड़े ,पारसनीस ,खरे आदि के द्वारा प्रकाश में लाए हुए ,उस समय की मराठी राज्य नेताओं तथा उनके हस्तकों,व्यापारियों नगरसेठों तथा हिन्दू समाज के धार्मिक ,समाजिक ,राजकीय सभी श्रेणियों के अनेक नागरिकों के पत्र -व्यवहार के ढेर -के-ढेर अब प्रकाशित हो चुके हैं। सेनापति हरिपन्त फड़के द्वारा लार्ड कार्नवालिस

और टीपू पर की गई चढ़ाई के समय भेजे गये,अत्यन्त पठनीय और संधि-विग्रह आदि राजकीय महत्व से भरे हुए पत्रों से लगाकर ,उस समय के लुटेरों की लूटपाट के समाचारों, यात्रियों की धार्मिक याात्रा तथा प्रवास-वर्णनो ,उस समय से बाजार के भावो और 'मेरा मठ लूट गया' का रोना रोने वाले शंकराचार्य की नाराजगी को प्रकट करने वाले पत्रो तक- इतने कागज -पत्रो के ढेर देखने को मिलते हैं कि उनसे उस समय के हिन्दू समाज के हालचाल,आचार -व्यवहार, विचार आदि का प्रत्यक्ष चित्र पढ़ने वाले के मन के सामने उपस्थित हो जाता हैं।

किन्तु इन हजारों कागज-पन्नो में सब मिलाकर देखने पर मुसलमानों द्वारा किये गये धार्मिक अत्याचारों और उनके द्वारा सम्पादित धार्मिक विजय का बदला निकालने की तडफड़ाहट किसी को भी हुई हो,ऐसा प्रसंग सहसा ढूँढे नहीं मिलता। टीपू से हुए युद्ध के समय ,हमारी जिन माँ-बहनों को उन अधर्मियें ने मुसलमानी बुरकों में बन्द कर रखा हैं,उन्हें यदि मुक्त नहीं किया,तो धिक्कार हैं मर्दानगी को -इस प्रकार तीव्र विषाद युक्त भावना से कोई भी हिन्दू सेनापति अथवा सैनिक दल या जनसमूह ,थोंड़े प्रमाण में ही क्यों न हो पर तलवार खीचकर आगे बढ़ा हो और उसने अपनी भ्रष्ट हुई अपनी हिन्दू स्त्रियों को छुड़ाकर किसी ग्रम अथवा नगर में उन मुसलमानों को काटकर फेंक दिया हो,ऐसा कोई भी गिनने योग्य उदाहरण दिखाई नहीं देता,ढूँढने से भी नहीं मिलता। उस समय के सैकड़ो कागज -पत्रों में से,एक भी ऐसा नही दिखता कि जिससे पता चले कि मुंसलमानो की इस धर्म विजय के कारण हिन्दूधर्म एंव राष्ट्र के सत्ताक्षेत्र एवं भूमिक्षेत्र के के दिनों -दिन होते हुए संकोच की किसी को चिन्ता तो क्या ज्ञान भी हुआ हो। यह कितने आश्चर्य तथा खेद की बात दिखती हैं। परन्तु थी यह यथार्थ स्थिति । मुसलमानों द्वारा हिन्दू धर्म पर किये गये अत्याचारों का बदला लेने के लिए उतना ही सशस्त्र एवं संगठित और धार्मिक प्रत्याक्रमण करना चाहिए,इतनी बात किसी ने केवल शब्दो में बोली -अथवा लिखी हो-इसका भी पता नहीं लगता -फिर वैसा काम खुद करने की बात तो दूर ही रही।

उस समय के कागज -पन्नो के ढ़ेर को यदि हम एक ओर भी रख दे, तेा भी एक पत्र का उल्लेख करने का मोह हमसे नहीं टाला जा सकता। हमारे हाड़-माँस में व्याप्त सद्गुण विकृति के दुर्गुण पर तीव्र प्रकाश और अद्यतन आविष्कार के अनूरूप 'क्ष'( ) किरण फेंकने वाले एक पत्र का तथा उसके साथ -ही -साथ टीपू की मृत्यु के बाद मराठों की हिन्दू सत्ता ने मुसलमानों की राजसत्ता का जिस युद्ध में हृदय विदीर्ण कर डाला था,उस खर्डा के विजय -युद्ध में हुई घटना का उल्लेख करना हम अपरिहार्य समझते हैं।

ऊपर उल्लिखित पत्र में मराठा राजसत्ता के सेनापति श्री हरिपंत फड़के ने मराठा साम्राज्य के कर्णधार नाना साहब को सूचित किया था टीपू ने अपनी हार के बाद जो करार किया था,उसका पालन के लिए आश्वासन के रूप में,उसने अपने दो पुत्र मराठा-अंग्रेज सेनापति के पास बंधक (धरोहर) के रूप में रहने के लिए भेजे थे यह लिखकर शायद यह जताना चाहते थे कि मराठों ने शत्रु को कितना दीन-हीन लाचार कर डाला था। फिर उन्होनें आगे लिखा था कि 'लार्ड कार्नवालिस ने वे दोंनों पुत्र मेरे पास भेजे थे। मैने (हरिपंमत फड़के ने) जब उन्हें देखा तब वे 'भूख-भूख' की रट लगा रहे थें। मैने उन्हें साथ के तम्बू में भेजकर पेटभर भोजन कराने की आज्ञा दी फिर ,कुछ समय बाद उन्हें अंग्रजी शिविर में कार्नवालिस के पास पहुँचा दिया।

इस ग्रंथ में इस घटना का उल्लेख करते समय मेरे मन में ऐसी ही एक दूसरी घटना का स्मरण हो आता हैं।

सन् 1700 के आरम्भ के दस वर्षो के आस-पास पंजाब के हमारे हिन्दू सिखों के परम प्रतापी धर्मवीर दसवें गुरू श्री गोविन्द सिंह को मुगल सत्ता से युद्ध में जूझना कठिन हो गया था। चंदनगढ़ के घेरे में अपने पुत्रों के साथ गुरू गोविन्दसिहं जी आखिर फँस ही गये। वक्त इतना नाजुक आ गया कि गुरू और उनमें से अनेक शिष्यत्व को त्यागकर सिख धर्म छोड़ते हुए किला छोड़कर भाग खड़े हुए। गुरूजी की आँखेा के सामने उनके दो पुत्र काम आये। अन्त में

गुरूजी ने आज्ञा दी कि युद्ध छोड़कर जिसे जिधर भी मार्ग मिले वह जान बचाता हुआ उधर ही भाग जाये। उनके बारह वर्ष से कम अवस्था के दो छोटे पुत्र कुछ अव्यवस्था के कारण मुसलमानों के हाथ लग गयें। अपनी धर्मबुद्धि के अनुसार मुसलमानों ने उनसे कैसा व्यवहार किया ?

इसी प्रकार टीपू सूलतान के दो पुत्रो को मराठों के हाथ लगने पर ,उन्होंने अपने धर्माचार के अनुसार उनसे कितना करूणापूर्ण व्यवहार किया था,यह सेनापति फड़के के पत्र में ऊपर दिया गया हैं।

इधर सिख गुरू गोविन्द सिंह के दो छोठे शावकों के मुसलमानों के चुंगल में फँसते ही उनसे प्रश्न किया गया,'क्या तुम मुसलमान होते हो? यदि मुसलमान बनोगे तो प्राणदान और जो कुछ तुम चाहोगे वह सब दिया जायेगा,अन्यथा नहीं। बच्चों ने उत्तर दिया,'हम मुसलमान नहीं बनेगें,प्राण जाते हैं तो चले जाएँ। ' इतना कहना था कि मुसलमानों के उस राक्षस न्याय ने हुक्म दिया कि इन बच्चों को तुरन्त दीवार में चुनवा दो। और वे जिन्दा दिवार में चुने जाने लगे। एक-एक ईट जुड़ती और उन बच्चो से फिर वही प्रश्न पूछा जाता,'क्या मुसलमान बनते हो? 'और वे हिन्दू बालक हर बार उत्तर देते,'मुसलमान नहीं बनेंगें। दोनो पर अंतिम पर अंतिम ईटें चढ़ी। साँस बन्द हो गयी। आज भी जब कोई असली हिन्दू उस स्थान पर उस बलिदान के वातावरण में प्रवेश करता हैं तो उसके कानों में ,'मैं मुसलमान नहीं बनूगाँ, नहीं बनूँगा! नहीं बनूगाँ!! हम हिन्दू,हम सिख,मृतयु को वरेगें' के स्वर गूँजते हैं।

मान लो कि घटना कुछ ऐसी हुई होती कि क्रूरता पूजक टीपू के हाथ में हमारे पेशवा के दो पुत्र युद्ध में हार जाने पर पड़ गये होते तो? तो टीपू हमारे हिन्दू हृदय-सेनापति फड़के की तरह उन्हें खिला-पिलाकर पेंशवाओं के साथ वापस कभी न भेजता। इस कार्य को उसने अपने धर्म के विपरीत और नामर्दी का लक्षण समझा होता। अपनी परम्परागत धर्म-प्रवृति के अनुसार वह क्रूरकर्मी टीपू हमारे पेशवा के बच्चों को जिन्दा दीवार में चुनाव देता-अन्यथा हाथी के पैरों से कुचलवा डालता।

और शक्ति -सामार्थ्य रहते हुए भी हिन्दू उससे सवा गुना राक्षस बन उसके राक्षसी कर्म का कभी बदला न लेते। कारण कि,उनके हाड़-माँस में मिले हुए सद्गुण विकृति के रोग ने उन्हें पहले से ही पछाड़ दिया हैं।

यहाँ यह भी कह देता हूँ कि संकट्ग्रस्त शत्रु पर न टूट पड़ो,रथी स रथी,तलवारियो से तलवारियों तथा निःशस्त्र शत्रु पर तब तक न प्रहार करो जब तक वह शस्त्रसम्पन्न न हो ले,बेशुध शत्रु के होश आने तक ठहरो आदि रणनीति महाभारत काल में समुचित रही होगी। कारण कि ,युद्धरत दोनों दल उन नियमों का पालन करते थें। दोंनों पक्ष एक रणनीति के पुजारी थे। परन्तु 'रणनीति पात्रापात्र विवेकानुसार की जानी चाहिए' गीता की यह शिक्षा भूल जाने से सद्गुण विकृति के कारण कमजोर और बुद्धिभ्रष्ट हुए हिन्दुओं ने मुसलमानी राक्षसी रणनीति के साथ मूल रूप से,उसी सात्विक,किन्तु कालानुरूप न होने के कारण केवल आत्मघातक सिद्ध होने वाली रणनीति के अनुसार लड़ने का व्यसन नहीं त्यागा।

ऊपर दिये गये टीपू के उदाहरण के उपरांत भी मराठों और दिल्ली के उस एक हजार वर्ष की मुस्लिम सत्ता का अवशेष ,जो निजामशाही राज्य के रूप में बचा था-उस निजाम से हुए -मुसलिम संघर्ष की अंतिम टक्कर में,वह मुस्लिम सत्ता लड़ाई के मैदान में हिन्दुओं के पैरों तले रौंदी तो गयी किन्तु उस लड़ाई में इस सद्गुण विकृति की जो एक लज्जापद घटना घटी उसका भी इस विषय का उपसंहार करते-करते हम उल्लेख कर रहे हैं।

खर्डा की लड़ाई में सद्गुण-विकृति की घटना

इस सहस्र वर्षीया हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष में सामान्यतः अंतिम निर्णयकारक लड़ाई खर्डा में सन् 1765 में हुई। उस लड़ाई में हिन्दू छत्रपति के मराठा वीरों ने निजाम की मुस्लिम सत्ता को मार-मार कर भुर्ता बना डाला। किन्तु सद्गुण विकृति के इस असाध्य रोग का एक ऐसा करारा झटका इस लड़ाई के बीच में ही मराठों को लगा जो अगर अधिक समय तक टिका रहता,तो पासा हिन्दुओं के विरूद्ध पड़ जाता और मुसलमान उस लड़ाई में मराठों को धूल चटाये बिना न रहते।

रणक्षेत्र में हिन्दू -मुस्लिम सेनाओं की भिड़ंत होते ही रणनीति की दाँव-पेंच में मराठों ने निजाम को ऐसा फाँसा कि वह एक निर्जल और निर्जन स्थान में घिर गया। उसकी विशाल सेना को रसद-पानी,पेय जल के अभाव में उतारा गया। उसके सैकड़ो मुस्लिम सिपाही,ऐसे गड्ढों का पानी पीने लगे,जहाँ जानवर भी पानी न पीते होंगें। 'स्वयं निजाम बहादुर' की आँखेा में पानी आ गया,किन्तु पीने का पानी नहीं मिलता था। मुस्लिम सेना जब ऐसे दुर्धर पेंच में फँस गई थी तब मराठों की तोपों की गड़गड़ाहट से आकाश गूँजने लगा।

परन्तु इसी समय संकट्ग्रस्त शत्रु पर-उसके दुष्ट होते हुए भी -रणांगण में मूर्च्छितावस्था में पड़े होने के कारण उसके थोड़ा सावधान होने तक हथियार न चलाना चाहिए,उसकी सहायता करनी चाहिए आादि हिन्दुओं की उदारता के पुरातन पागलपन की लहर का -पेशवाओं के मंत्रिमंडल का एकाएक दौरा आ गया। अपने 'मुख्य शत्रु ' निजाम साहब प्यास के मारे मरे जा रहे हैं-उन्हें जिन्दा कैद कर लेने और उनकी सारी सेना को नष्ट करने का मौका हाथ आने पर भी -ऐसे शत्रु पर क्षत्रियोजित दया दिखाना ही सच्चा वीर कर्त्तव्य हैं। ऐसे करूणापूर्ण विचार से पेशवा ने अपने मंत्रिमंडल की सलाह से अपनी सेना के लिए बड़ी कठिनाई से प्राप्त और संग्रहीत पीने के पानी में से निजाम और उसके कुटुम्बियों के लिए पर्याप्त पीने के पानी की व्यवस्था की और वह भी ऐन जोर -शोर से जारी लड़ाई के बीच,जब हिन्दुओं ने सारी मुस्लिम सेना और स्वतः निजाम को भी पक्की कैंचाी में जकड़ रखा था तब !! हैं न 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' के सद्गुण की विकृति का एक सुन्दर नमूना!!

वदतो व्याघात का नमूना

मुसलमानों का युद्ध में पराभव करने के बाद बलवन्तर अवसर मिलने पर भी शुरू से ही हिन्दुओं को ऐसा डर लगता रहा यदि आज हमने भ्रष्ट हिन्दुओं को अथवा जन्मजात मुसलमानों को हिन्दू बना लिया तो इससे अधिक चिढ़कर देश के और आसपास के मुस्लिम राज्य और लोग कल हम पर सशस्त्र चढ़ाई करेगें अथवा सीमा पर की कोई एक नई टोली हम पर टूट पड़ेगी और हमारे द्वारा किये गये कृत्यों से दस गुने अधिक अत्याचार और जोर जबरदस्ती करेंगें । मुसलमानों के इस भय के कारण ही हिन्दुओं ने यह सख्त नियम बनाया कि भ्रष्ट हिन्दुओं को शुद्ध करके फिर से हिन्दू जाति में सम्मिलित न किया जाये । भंगी से लगाकर ब्राह्मण तक सभी जातियों ने शुद्धिबंन्दी होने वाले सशस्त्र आक्रमणों और अत्याचारों से डर के कारण ही।

उपर्युक्त विचार कितना मूर्खतापूर्ण ,अपूर्ण और गलत हैं,इसे समझाने के लिए तथा इस ग्रंथ के सभी निबन्धों में हिन्दू-मुस्लिम युद्ध का सूक्ष्म विश्लेषण करते समय हमने जो वक्तव्य दिए हैं,उनका ऐतिहासिक प्रमाण कितना मिल सकता हैं,इसके दिग्दर्शन के लिए इस ग्रंथ में टीपू से हुए युद्धकाल में घटित मराठा इतिहास का कुछ हाल विस्तारपूर्वक दिया गया हैं।

थोड़ी देर के लिए इस उदाहरण को एक तरफ रखें तो भी उससे पहले यह सामान्य प्रश्न पूछना पर्याप्त होगा कि 'मुसलमान अधिक चीढ़ जायेगें' इस भावना के सर्वव्यापी डर से यदि हिन्दू वास्तव में ग्रस्त थे तो फिर मुसलमानों पर धार्मिक आक्रमणों की बात ही क्या,हिन्दुओं ने अपनी राजकीय स्वतंन्त्रा के लिए भी मुसलमानों पर राजकीय प्रत्याक्रमण न

कि किए होते । प्रतिकार के लिए उनका सामना भी न किया होता । कारण, सशस्त्र हमला कर जहाँ-जहाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं के राज्य जीते,वहाँ-वहाँ ही उन्हें हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार कर सकना सम्भव था। यदि भय ही मालूम पड़ता था तो हिन्दुओं को सबसे पहले मुसलमानों के राजकीय आक्रमण का ही भय होना चाहिए था। किन्तु यदि छुटपुट घटनाओं को छोड़ दें और उस सारे इतिहास को समग्रता की दृष्टि से देखे तो पता चलेगा कि मुहम्मद गजनबी और गौरी के ठेठ राक्षसी आक्रमंणो से लेकर अब तक हिन्दू अपने स्वराज्य और स्वधर्म की रक्षा के लिए रण में जूझे ,छिने राज्यों को फिर से हस्तगत किया,फिर हारे,फिर जीते,आज हारे तो कल जीते ,आज जीते तो कल हारे,परन्तु सतंत छः सात सौ वर्ष तक हिन्दू मुसलमानों से शस्त्र धारण करके लड़ते ही रहे,हिन्दुस्थान की चप्पा-चप्पा भूमि के लिए हिन्दू जूझते रहे और अन्त में मुस्किम राजसत्ता को उन्होनें दाँत में तृण दबाने के लिए बाध्य कर दिया, यदि वे हिन्दू मुसलमानों के चिढ़ने से घबराने वाले थे, तो ऐसा कहना 'वदतो व्याघात' का एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

मुसलमानों को हिन्दू बनाना अथवा मुसलमानों द्वारा स्थापित धार्मिक सत्ता पर किसी भी प्रकार का प्रकार का प्रत्याकमण न करना धार्मिक मामलों में उनको न सताना,क्योंकि यह काम हमारे हिन्दू धर्म के विपरीत हैं- यह बात जब मुसलमानों की समझ में आ गई कि हिन्दुओं की उपर्युक्त निशचित प्रवृति हैं तो फिर उन्हें अपने द्वारा स्थापित मुस्लिम धर्मसत्ता के संरक्षण के लिए चिन्ता करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रही। यदि राजसत्ता हिन्दुओं के हाथ में चली गयी तो परवाह नहीं। बस धार्मिक आक्रमण बराबर जारी रहे। सारे भारत भर में अपनी धर्मसत्ता के कारण हिन्दू जगत् की कितनी हानि हुई, इसकी चर्चा हमने अपने इस ग्रंथ में बीच बीच में की हैं। अब यहाँ कुछ विशेष बातों का संक्षिप्त विवरण देते हैं और वे इस मुस्लिम धर्मसत्ता के कारण जो अनेक गौण हानिकारक परिणाम हुए उनके बारे में तो नहीं,बल्कि उनके कारण जो दो सर्वाधिक हिन्दू विधातक परिणामकारिणी बातें हुई उनके ही बारे में हैं।

संख्याबल की हानि

उन एक हजार वर्षो मे मुसलमानों ने साधारणतः दो से तीन करोड़ हिन्दुओं को भ्रष्ट किया होगा। हिन्दुओ के सख्याबल का जो रक्तक्षय चल रहा था उसे तत्कालीन हिन्दू समाज भली प्रकार समझता था। परन्तु उस रक्तक्षय की बीमारी पर शुद्धिबंन्दी की भीषण 'बुद्धिभ्रंश' के कारण उन्हें इसका इलाज नहीं सूझता था। जैसे कोई असाध्य रोग का रोगी विवश होकर इस रक्त क्षय की प्राणान्तक व्यथा को विवश होकर भोगता रहा।

भू क्षेत्र की हानि

परन्तु संख्या बल की हानि से भी जो अधिक हानि हिन्दू राष्ट्र की होती जा रही थी वह थी हिन्दुस्थान की विस्तृत भूमि हिन्दुओं के हाथ से निकलती जा रही थी। खण्ड-खण्डशः होकर मुस्लिम धार्मिक सत्ता के द्वारा,छिनती चली जा रही थी।

हिन्दुओं से लड़ाई लड़कर सारे हिन्दुस्थान में जितनी भूमि मुसलमान न जीत सके उतनी भूमि मुसलमानों ने हिन्दुओं को भ्रष्ट करके जीत ली।

जो दो -से-तीन करोड़ हिन्दू भ्रष्ट कर उन्होनें मुसलमान बनाये और जो लाखों मुसलमान हिन्दुस्थान में बाहर से आये-उन दोंनो का ही हिन्दुस्थान में स्थायी रूप से निवास हो गया। उनके निवास तथा विस्तार कें लिए,हिन्दुस्थान के नगर-नगर ,गाँव -गाँव और प्रदेशों में जितनी भूमि लगी वस्तुतः वह सब भूमि मुसलमानों की सत्ता में चली गई। उस विस्तीर्ण भाग पर उनका 'हरा चाँद 'बेरोकटोक फेराता था। मुसलमानों के हाथ से राजसत्ता हिन्दुओं ने और विशेषकर मराठों ने सारे हिन्दुस्थान में हजार वर्ष के युद्ध के बाद छीन ली थी तो भी व्यक्तिगत और सामुदायिक सत्ता मुसलमानों की ही बनी हुई थी। वह जायदाद भी मुस्लिम नागरिको की ही थी।

फिर बहुपत्नी प्रथा और प्रच्छन धर्म प्रसार के कारण मुसलमानों की जनसंख्या अधिकाधिक बढ़ती ही जाती थी और उसी प्रमाण में हिन्दुस्थान की अधिकाधिक भूमि भी उनकी अधिसत्ता तें दबकर मुसलमानी धर्मसत्ता के हाथ मे पड़ती जाती थी। वस्तु-स्थिति की थोड़ी भी कल्पना की जा सके इसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हिन्दुओं -की विशेषतया मराठे की राजसत्ता सचमुच में प्रस्थापित हो चुकने पर भी सभी छोटे -बड़े नगर-ग्रमों में,मुस्लिम कहलाने वाला एक अलग हिस्सा बसता था। सभी नगरो की बात छोड़िए -खास पूना ,सतारा, कोल्हापुर, बडौदा, नागपुर, देवास ,धार इंदोर ,ग्वालियर, जाधपुर, जयपुर, उदयपुर,और आगे चलकर सिखें के अमृतसर ,लाहौर से लगाकर खास श्रीनगर के समान-हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी स्वतन्त्र राजधनियों में से -हर एक में हजारों मुसलमानों से भरे भिन्न-भिन्न हिस्से के 'मुस्लिमपुरा' 'मुस्लिम आबादी' इत्यादि नामों से अलग-अलग बसे हुए थे,और उन हिस्सों पर मुसलमानों की केवल धर्मसत्ता ही नहीं थी,बल्कि वहाँपर भूस्वामित्व भी उन्हीं का स्थापित हो चुका था।

और फिर खास बात यह भी कि उन लाखों -लाख मुसलमानों को धार्मिक सत्ता और उनकी व्यक्तिगत जायदाद का कानूनी संरक्षण भी ये राजा और रियासत मुसलमानों को अपनी प्रजा मानने के भ्रम के कारण अपने हिन्दू नागरिकों के बराबर ही समझकर करते थें। उसमें भी उस काल के मुसलमानो की वृति के विचार से धर्मान्तर यानी राष्ट्रन्तर का सिद्धान्त सौ प्रतिशत लागू होने और उस समय हिन्दू-मुसलमानों के बीच कट्टर शत्रुता का ही एकमेव नाता होने के कारण मुसलमानों के हाथो में गया वह सारा भू-भाग शत्रु के हाथ में सौप देने के ही समान था।

इस प्रकार हिन्दुस्थान के गाँव -गाँव में नगर -नगर में और प्रदेशो में उस काल से ही छोटे-बड़े मुस्लिम स्थानों का निर्माण होता जा रहा थाा। अर्थात् अखंड हिन्दुस्थान का विभाजन हिन्दू विभाग और मुस्लिम विभाग -इन दो भागो के रूप में प्रचछन्न रूप से उसी समय से होने लगा था। यह छोटे-छोटे मूस्लिम स्थान उस समय प्रथापित हिन्दू राज्यसत्ता के भवन की नीवं में इस्लामी धर्मसत्ता द्वारा छिपे रूप में रोपित टाइमबम ही थे।

परन्तु लगता हैं कि इतना होने पर भी उस समय के हिन्दूराज्य सत्ताधिकारियों सामान्य नागरिकों अथवा इतिहासकारों तक को उपर्युक्त भूमिहानि के विद्यमान और संभाव्य भंयकर दुष्परिणामों का तीव्र अथवा सामान्य अनुभव नहीं था। कारण,जिस तरह हम यहां उस समय हिन्दू राष्ट्र पर शुद्धिबन्दी आदि रूढ़ियो के कारण हुई संख्याबल की हानि अथवा भूमि -हानि की स्पष्ट चर्चा कर रहे हैं, उनकी स्पष्ट ,निर्भीक ,दूरदर्शी और ऐतिहासिक विश्लेषण युक्त चर्चा किसी के द्वारा की गई नहीं मिली। कहीं कुछ मिली भी तो वह अपवादस्वरूप ही समझी जायेगी।

दूसरी बात कि यदि उस समय के हिन्दुओ को मुस्लिम धर्मसत्ता के उपर्युक्त दुष्परिणाम का तीव्र अनुभव हमें होता तो जैसा कि इसके पूर्व वर्णन कर चुके हैं, टीपू सुल्तान की रातसत्ता को धूल में मिलते ही महाराष्ट्रीय रात मंडल ने एक दम टीपू के नेतृत्व में मुसलमानों द्वारा स्थापित इस्लामी धर्म सत्ता को भी धूल में मिलानें के लिए सशस्त्र एंव शक्तिशाली धार्मिक प्रत्याक्रमण भी अवश्य ही किए होते। कारण,कि पैसा प्रत्याक्रमण करने का अनुकूल अवसर हिन्दुओं को कभी न मिला होगा उतना सब तरह से अनुकूल समय मिला था। यह तो हम ऊपर बता ही चुके हैं कि उस समय का हाथ पकड़ सकती हो अथवा उनकी ओर केवल टेढ़ी नजर से भी देख सकती हो। हमारा इस काल का वीर -भाट अपने पोवाड़े (वीरकाव्य) में हिन्दुत्व के परिपूर्ण अभियान से कहता हैं कि-

" जलचर हैदर निजाम इंग्रज रण करिता थकले।
ज्यानी पुण्याकडे विलोकिले ते संपत्तीला मुकले।।

(हुए पस्त गणद्स्यु हैदर निजाम अंग्रेज लड़ाई में।
कि देखा पूना और पड़ी सम्मति खटाई में।)

राक्षस से लड़ाई

राक्षस से लड़ना और उसे जीतना हो तो उससे सवाया राक्षस बनकर लड़ना चाहिए। यदि उपर्युक्त भोंसले हाल्कर ,पटवर्धन ,आदि मराठा राज्यमंडल के सरदारों अधिकारियों ,पेंशवाओं और छत्रपतियों ने अपने प्रमुख अधिकारियों से विचार विनिमय कर निम्नभाषा में अथवा निम्न आशय की एक राजाज्ञा महाराष्ट्र में समस्त हिन्दू मात्र के नाम जारी की होती कि-

''हमारे राज्यमण्डल ने निश्चय किया हैं कि जिस प्रकार महाराष्ट्रीय वीरों के पराक्रम द्वारा 'सुल्तान ' टीपू की इस्लामी राजसत्ता धूल में मिला दी गई उसी प्रकार उस शैतान 'टीपू ' के नेतृत्व में मुसलमानों ने हिन्दुओं पर घोर राक्षसी अत्याचार कर जो इस्लामी धर्मसत्ता स्थापित की हैं , उसे भी धूल में मिलाने और उन अत्याचारी अपराधियों को कठोर दण्ड देने के लिए प्रत्याक्रमण किया जाये।

'' सारा हिन्दू संसार आघ श्री शंकाचार्य के बाद दूसरे स्थान पर जिनकी धुरंधरता मानता आया हैं- विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य संस्थापक उन श्री शंकार्चाय विघारण्य स्वामी द्वारा प्रणीत शास्त्राचार को शिरोधार्य कर, अत्याचारी ,मुस्लिम धर्मसत्ता पर प्रत्याक्रमण करने के कार्य में जिस राष्ट्रघातक बेड़ी ने आज तक हिन्दू समाज को पंगु बनाकर रखा हैं, उस शुद्धिबंन्दी की मानसिक बेड़ी को हम आज प्रथमतः तोड़ रहे हैं और हमारे महाराष्ट्रीय राज्य के समस्त अधिकारियो को निम्नानुसार व्यवस्था कड़ाई से लागू करने की आज्ञा दी जाती हैं कि-''प्रत्येक ग्रामाधिकारी और नगराधिकारी अपनी-अपनी सीमा के ऐसे हिन्दू स्त्री-पूरूषों को जिनके बारे में पता चले किवे मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये जाकर विघर्मी बने हैं,एक 'निराधन शिविर' में शासन के संरक्षण में एकत्र कर रखे। उनके खान-पान ,जीवनयापन की व्यवस्था में कोई कमी न रहने दें।

''प्रत्येक ग्रम में ऐसे मुसलमान घर के समस्त मुसलमान स्त्री-पुरूषों को बेड़ी ठोककर कारागृह मे बन्द कर रखें जिनके घरो में हिन्दू स्त्रियाँ,बालक -बालिकाए जबरदस्ती भ्रष्ट करके रखने के लिए बाघ्य की जाती हुई मिलें और वहाँ भी हिन्दू स्त्रोयों तथा बालक बालिकाओं को तत्काल मुक्त कर उनसे ममत्वपूर्ण व्यवहार करते हुए उन्हें ऊपर बतायें 'निरोधक शिविर' के समुदाय में पहुँचा दें।

'' उसी प्रकार टीपू द्वारा कूर से कूर मुसलमान तरूण चुनकर जो अपनी लाड़ली इस्लामी पल्टन बनाई गई थी उसके जवान सैनिको को जहाँ भी वे मिले हिन्दुओं की जिन तरूण,अनाथ,सुन्दर कन्याओं का अपहरण कर टीपू ने इन सैनिको को इनाम में बाँटा था उनको खोजकर उनसे ममतापूर्ण व्यवहार कर उन्हें भी उक्त निरोधक शिविर में भेजा जाए।

''उपर्युक्त व्यवस्था होते ही वरिष्ठ अधिकारी एक राष्ट्रीय शुद्धि सप्ताह की योजना करेंगें। इससे पूर्व उपर्युक्त 'निरोधन शिवरो' में जो स्त्री-पुरूष एकत्र हुए होगें उन्हें बड़ी-बड़ी टोलियों में उनके मूल निवास स्थान की बस्तियों से सटे पवित्र तीर्थ स्थानों में अथवा धारवाड़, बदामी आदि जिन स्थानों पर मराठों ने टीपू की अत्याचारी सेंनाओं का मान मर्दन किया था उन नगरों में सैनिक संरक्षण के नीचे भेज दिया जाये। उन स्थानों पर मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये हिन्दू स्त्री-पुरूषो की शुद्धि के लिए बड़े यज्ञ किये जावे और बड़े समारोह पुर्वक हिन्दूधर्म की जय के उद्घोश से उन सबकी शुद्धि की जाए। उनमें से जिन्हें उनके कुटुम्बीय जन समानता एवं ममतापूर्वक अपनाने को सहमत हों, उन्हें घर पहुँचा दिया जाये। जिन्हें उनकी जाति वाले आदर से स्वीकार न करें उन्हें उनकी अपनी राजपूती पैाराणिक कथा के अनुसार एक ''अग्निकुल''

नामक नयी जाति हिन्दू जगत् की परिधि में ही बनाई जाये। उन्हें अन्य जाति के समकक्ष ही हिन्दुत्व के सब अधिकार प्राप्त कराये जायें। राज्य के धर्म के सभी अधिकारियों को आज्ञा दी जाये कि उन्हें अन्य हिन्दुओं के समान ही हिन्दुत्व के सभी अधिकारो का उपभोग का अधिकार होना चाहिए।

''टीपू की आज्ञानुसार मुसलमानों ने पहले जितनी कुलीन और सुन्दर तरूणियो को पकड़कर भ्रष्ट कर उनको विशेष 'इस्लामी पल्टन'' के सैनिको में बांटा था कम से कम उतनी मुसलमानों की सुन्दर और तरूण स्त्रोयों को पकड़ लाकर उपर्युक्त शुद्धि -समारोह में ही हिन्दू बनाकर उनके विवाह उक्त युद्ध में जिन मराठा वीरों ने विशेष पराक्रम किया उनके साथ कर दिये जायें।

''इसके बाद टीपू से हुए युद्ध काल में जिन मुसलमानों ने हिन्दुओं पर धार्मिक अत्याचार किये,हिन्दू स्त्रियों से बल्तकार किये,हिन्दू देवी-देवताओं का उच्छेद किया उन हजारों मुसलमानों अधिकारियों को दण्ड देने के लिए उन्हें जिन कारागृहो में बन्द कर दिया गया था, वहाँ-वहाँ से उन्हें निकालकर सशस्त्र पहरे में जब वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा ऐन वक्त पर सूचना प्राप्त हो,उन चार-पाँच मुख्य नगरों का ले जाया गया। खासकर जिन राजधानियों के नरगुंद और कित्तुर नगरों में स्वतः टीपू और उसकी मुस्लिम सेना ने हिन्दू स्त्री-पुरूषेा पर अनंत अत्याचार किये थें,उन अत्याचारों का बदला,उन आततायियेां को उन्हीं नगरो में हिन्दू स्त्री-पुरूषों के उसी समाज के बीच ले जाकर लिया जाये। इसलिए कारागृह में पकड़कर रखे मुख्य अत्याचारियों और विशेषतः टीपू की उस लाड़ली इस्लामी पल्टन के सैनिको को नरगुंद और कित्तुर ले जाया जाये। उस शुद्धि सप्ताह के निश्चित दिन इन सैकड़ो अत्याचारियों को नगर के विस्तीर्ण चौक में हजारों हिन्दू नागरिकों की उपस्थिति में सशस्त्र सैनिको और तोपों से घिरे पहरे में खड़ा किया जाये-फिर उनके द्वारा हिन्दुओं पर किये हुए अत्याचार का पत्रक पढ़कर सुनाया जाये और उसके बाद उन्हें तोप के मुँह से बांन्धकर उड़ा दिया जाये।

हिन्दू शहीदों की स्मृति में राष्ट्रीय सम्मानपूर्ण वन्दना

अन्त में इसी शुद्धि सप्ताह के अन्तिम दिन पहले टीपू की सेनाओं ने जब हिन्दुओं के गाँव-गाँव उजाड़े ओर वहाँ के हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाने का अथवा असह्य यातनाए देने का प्रलयंकर क्रूर कर्म संपादित किया तब पीछा करने वाले मुसलमानों के हाथ में पड़कर अपना धर्म न चला जाये इस विचार से जो हजारों हिन्दू-स्त्री-पुरूषो ,कृष्णा अथवा तुंगभद्रा में डूब मरे थे अथवा जिन्होनें अन्य साधनों द्वारा प्राणत्याग किया था परन्तु हिन्दू धर्म नही छोड़ा उन हजारों हिन्दू शहीदों की सम्मानपूर्ण वन्दना करने के लिए सारे महाराष्ट्र के नगर -नगर में और प्रत्येक किले पर -हजारों हिन्दुओं द्वारा हिन्दू धर्म की जय का घोष करते समय ,तोपो की तीन -तीन आवाजें की जाए।

धार्मिक प्रत्याक्रमण की प्रतिध्वनि

यदि मुसलमानों की धार्मिक सत्ता पर मराठों ने ऐसा प्रत्याक्रमण किया होता तो ऊपर दिये -समारोह के दिन सारे महाराष्ट्र के किलो पर दागी तोंपों की आवाज की प्रतिध्वनि केवल गोदावरी ,कृष्णा तुंगभद्रा नदियों के मेदान में ही न गूँजी होती वरन् गंगा -यमुना-सिन्धु और उससे भी आगे वथरू नदी के दर्रो तक सारा मुस्लिम जगत् थर्रा उठा होता ''हिन्दू लोग भ्रष्ट कर बनाये लाखो मुसलमानों को फिर से हिन्दू बना ले रहे हैं । हिन्दुओं ने अपने पैरों में स्वयं ठोकी शुद्धिबंन्दी की बेड़ी काटकर फेंक दी हैं। !''केवल उपर्युक्त समाचार का ऐसा करारा धक्का कम से कम हिन्दुस्थान के मुसलमानों को लगा होता जैसा कि हजारों तोपो की दनदनाहट का न लगता। उसका अस्तिव खिसकने लगाा होता। यह केवल ऐतिहासिक तर्क नहीं तेा ऐतिहासिक संभाव्यता की यह स्वीकारोक्ति हैं।

परन्तु वह संभाव्यता संभाव्यता ही बनी रही । हिन्दुओं ने अपने पैरों की शुद्धिबन्दी की बेड़ी नहीं ही तोड़ी और न तोड़ने दी। अर्थात् मुसलमानों द्वारा उस समय स्थापित की गयी इस्लामी धर्मसत्ता न उखाड़ी जा सकी।

परन्तु मुस्लिमों द्वारा हिन्दुओं पर घोर आक्रमण किये जाने से पूर्व से ही जन्मना जाति -भेद का जो राष्ट्रघातक विष हिन्दू जगत् के शरीर में भिंदने लगा था उसके कारण और बाद में मुसलमानों के अघोर एवं सतत् आक्रमण के परिणामस्वरूप जाति भेद के शिकंजे में हिन्दू समाज के अधिकाधिक जोर के साथ जकड़े चले जाते रहने के कारण हिन्दू धर्म और संस्कृति की तथा समाजिक आचार-विचार की वह मूल विस्तारशीलता पाचनाशक्ति और धार्मिक क्षेत्र में प्रत्याक्रमण प्रवृति बिलकुल अशक्त और क्षीण हो गयी। इसके कारण म्लेच्छो के समान परधर्मियों पर आक्रमण कर वह उन्हें हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज में किस प्रकार आत्मसात कर ले सकती थी?

''जो जन्मना हिन्दू नहीं उसे यदि गंगा -स्नान भी करायें तो वह जातिवंत हिन्दू कैसे बन सकता हैं? कारण जाति तो जन्म तो जन्म से निश्चित होती हैं

रासभ धुतला महातीर्था माजी।
नगहे जैसा तेजी श्यामकर्ण ।।
(श्यामकर्ण बनता क्या वह तीव्रगामी।
नहाये यदि गंगा गंगा नदी में भी।।)

'' और ऐसे जन्मजात मुसलमानों के हिन्दुत्व स्वीकार करने पर उसे क्या हम अपनी जन्माजाति में मिला लें? क्या उसे पंक्ति में बिठा लें? और यदि वह स्त्री जन्मजात म्लेच्छ हुई तेा उसके द्वारा हिन्दू के सिंघौर का टीका लगाने मात्र से हम उससे विवाह कर लें? और सो भी खुल्लम -खुल्ला? असम्मभव!असम्भव!! अधर्म्य! अधर्म्य!! इस प्रकार की धर्म भावना ,ब्राह्मण क्षत्रियो ही की नहीं वरन् हिन्दू जगत् की माँग -मेंहतर ,गोड़भील आदि तथाकथित अंत्यज अथवा वन्य जाति के रोम-रोम में समाई थी। उन्हें यही सच्चा हिन्दू धर्म प्रतीत होता था। इस जन्मना जातिपने का मूल सिद्धान्त ही यह था-जो स्वेचछा से कही या जबरदस्ती म्लेच्छों के सम्पर्क के कारण एक बार भ्रष्ट हुआ ,सो जन्म भर के लिए भ्रष्ट हो गया। उसकी वंशपरम्परा भी भ्रष्ट हो गयी। ''उपर्युक्त बुद्धि भ्रष्टता से पछाड़े जाने के कारण उस समय यदि कोटि -कोटि हिन्दुओं की शुद्धि करने अथवा म्लेच्छों पर धार्मिक प्रत्याक्रमण का तीव्र विरोध होता था तो इसमें आश्चर्य की क्या बात?

सौभाग्य की बात

हिन्दुस्थान पर मुस्लिम आक्रमण के प्रारम्भ काल में शुरू हुई रोटी -बन्दी, बेटी-बन्दी,शुद्धिबन्दी, सिन्धुबन्दी आादि बंदियों के समान अच्छा हुआ कि ''बृहस्पति ने किसी एक स्मृति में अनुष्ठप प्रक्षिप्त कर राज्य बंन्दी की बेड़ी भी हिन्दू जाति के पैरो में ठेकने की आज्ञा प्रसारित नहीं की । 'मुस्लिमो द्वारा जबरदस्ती भ्रष्ट किया गया हिन्दू फिर से हिन्दू नहीं बन सकेगा और मुसलमानो से व्यवहार करने वाला हिन्दू भी मुसलमान बनता हैं- ऐसी आज्ञा करने वाली शुद्धिबन्दी की ही धर्माज्ञा के समान कोई हिन्दू राज्य यदि मुसलमान जीत ले तो वह भ्रष्ट हुआ राज्य फिर कभी हिन्दू नही बन सकेता,जो हिन्दू राज्य बापस लेने का प्रयत्न करेगा वह भी भ्रष्ट होकर मुसलमान बन जाएगा परन्तु वह (मुसलमानों से जीता हुआ) राज्य हिन्दू राज्य नहीं बन सकेगा। ऐसे राज्य बंन्दी की धर्मज्ञा भी यदि किसी हिन्दू बृहस्पति ने जारी की होती तो मुसलमानो की धर्मसत्ता का उखाड़ फेखने के लिए राजकीय प्रत्याक्रमण करना भी इस कथित राज्यबन्दी की बेड़ी के कारण पंगु बने हिन्दुओं के लिए अधर्म्य होने से अशक्य हो गया होता और जैसे अफगानिस्तान ,ईरान ,बेबीलोन,प्राचीन मिस्त्र ,तुर्किस्तान से ठेठ मोरक्को तक के सारे पुराने राष्ट्र मर -मिटकर मुसलमान हो गये उसी प्रकार हिन्दुस्थान भी इस

समय मुस्लिम स्थान बन जाता। हिन्दू राष्ट्र के इतिहास की अंतिम पंक्ति वही लिखी जाती। परन्तु हिन्दू राष्ट्र का वह अनिष्ट अंत मे टल गया। इतना ही नहीं तेा हिन्दू पराक्रम के देदीप्यमान तेज से प्रकाशित हिन्दू जाति के पुनरूज्जीवन का एक अगला अध्याय भी लिखा गया।

उस काल में न केवल हिन्दुस्थान में अपितु संसार के काफी बड़े हिस्से में मुसलमानों ने अपनी राजकीय एवं धार्मिक सत्ता प्रस्थापित की थी। उन लोगो के सभी राष्ट्रो के इतिहास से यही बात सिद्ध होती हैं कि जो बहुसंख्यक राष्ट्र मुसलमानों की राजसत्ता को उलट दिया परन्तु मुसलमानों द्वारा स्थापित धर्मसत्ता का अबाधित रहने दिया वे राष्ट्र भी मुसलमानों के सतत् और भयावह उपद्रवो से छुटकारा न पा सके। उस समय केवल वे ही पाँच दस राष्ट्र मुसलमानों का ग्रास होने से बच सके। इतना ही नहीं बल्कि मुसलमानों को चबा डालने में सफल हो सके,उन्होंने अपने ऊपर की मुस्लिम राजसत्ता को उखाड़ डालने के तुरंन्त बाद मुस्लिम धर्मसत्ता पर भी एकदम दारूण प्रत्याक्रमण कर अपना राष्ट्र धार्मिक मामले में भी इस्लामविहीन कर डाला। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए स्थानाभाव के कारण उस समय एक ही उदाहरण देंगें । वह स्पेन का हैं-

मुस्लिमों द्वारा पादाक्रान्त स्पेन मुस्लिम कैसे हुआ?

जिस कालावधि में हिन्दुस्थान पर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे उसी समय अरब विजेताओं ने स्पेन देश को भी पदाक्रान्त कर वहाँ ओमियेड खलाफा के आधिपत्य में एक प्रबल मुस्लिम राजसत्ता स्थापित की थी। अर्थात् यूरोप के अन्य हिस्सो के अनुसार स्पेन देश ईसाईयों पर भी मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों का कहर टूट पड़ा था। असंख्य ईसाई स्त्री-पुरूषों को भ्रष्ट किया गया अथवा मार डाला गया। आगे चलकर कुछ शताब्दियों बाद जब मुसलमान आपस में ही लड़नें-भिड़नें लगे तब यूरोप में शक्तिशाली बन चले फ्रान्स के समान ईसाई राष्ट्र की सहायता और पोप के प्रबल प्रोत्साहन से, मुसलमानों के राजकीय और धार्मिक उत्पीड़नों से त्रस्त स्पेन के ईसाईयों ने अपने एक पुराने राजवंश के नेतृत्व में मुसलमानी सत्ता के विरूद्ध विदोह खड़ा किया। एक वर्ष की लड़ाई कें बाद अन्त में ईस्वी सन् की पन्द्रहवी शतावदी में स्पेन के ईसाइयों ने मुसलमानी राजसत्ता पूरी-पूरी उखाड़ फेंखी। परन्तु हिन्दुस्थान के ही समान स्पेन में भी यद्यपि मुसलमानों के हाथ से राजसत्ता चली गई थी तथापि मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये असंख्य स्पेनी ईसाईयें पर और उनके बसे हुए भू-भाग पर मुसलमानों द्वारा स्थापित इस्लामी धर्मसत्ता अबाधित रूप से बनी हुई थी। इतना ही क्यों वह इतनी अधिक विस्फोटक और भयावह थी कि स्पेन को दो हिस्सो में विभाजित करने का कारण बन सकती थी।

जिन्हे अपनी नजरों के सामने यह संकट स्पष्ट दिखई देता था और जो मुसलमानो द्वारा किये गये धार्मिक अत्याचारों का मौका मिलते ही बदला लेने की राह देख रहे थे उन स्पेनी ईसाईयों ने मुसलमानी राजसत्ता के समान ही उपर्युक्त मुसलमानी धर्मसत्ता को भी धूल में मिलाने का निश्चय किया। और फिर ईसाई लोगो के पैरो में कुछ हिन्दू लोगों के समान राटी-बन्दी,बेटी - बन्दी, शुद्धिबंन्दी, सिन्धु -बन्दी आदि धर्माचारो के बेड़ियों थोड़े ही पड़ी थी। इस कारण मुसलमानों द्वारा भ्रष्ट किये गये अपने असंख्य ईसाई स्त्री-पुरूषों को 'बपतिस्मा' देकर फिर से ईसाई धर्म में लाने का कार्य राजकीय युद्ध में विजयी बने स्पेनी लोंगो के मन में आते ही पूरा करना इतना सुलभ था। अड़चन रही थी केवल मुस्लिम राजसत्ता । उसकी शस्त्र-शक्ति का खात्मा होते ही स्पेनी ईसाई ने सारे देश से मुस्लिम धर्म को निकाल बाहर करने के लिए जारदार आन्दोलन किया। मुसलमानों द्वारा हजारों की संख्या में भ्रष्ट किये गये ईसाइयों को फिर से 'बपतिस्मा' देने के अखण्ड सत्र प्रारम्भ हुए। स्पेन ने जब मुसलमानों द्वारा यहाँ- बहाँ सशस्त्र सघर्ष देखा तो वे और भड़क उठे। स्पेन की ईसाई राजसत्ता ने ,ईसाई धर्मसत्ता ने और ईसाई जनता ने खुली प्रतिज्ञा की कि स्पेन को

मुसलमान कहलाने वाले किसी मनुष्य का अथवा मस्जिद कहलाने वाली किसी वस्तु का अब आगे अस्तित्व ही न रहने दिया जायेगा।

स्वतंत्र स्पेन के शासन की ओर से एक अवधि निश्चित कर दी गयी कि उसके बीच राज्य के सारेमुसलमान या तो स्वयंस्फूर्ति से ईसाई धर्म स्वीकार कर लें अथवा परिवार के साथ सदा के लिए देश से बाहर निकल जाएं । इस अवधि में जो ऐसा नहीं करें उन सभी मुसलमान स्त्री पुरूष के सर धड़ से अलग कर दिए जाएंगें ।

क्या कहते हैं ? कैसी कठोर सह ईसाई राजाज्ञा है ? हां हैं । परन्तु यह भी याद रखो कि जब मुसलमानों ने स्पेन जीता था तब उन्होनें वहाँ की ईसाई जनता को बलपूर्वक मुसलमान बनाने में इससे भी अधिक क्रुर अत्याचार किये थे। तब राजपथों औैर गली-कूचों में मुसलमानों ने ईसाई -रक्त के पनाले बहाए थे। अब ईसाई मुसलमानों के खून के नाले बहाने चले थे। उक्त अवधि के समाप्त होते ही स्पेनिश ईसाइयों ने सारे देश में अवशेष मुसलमानों आबालवुद्ध स्त्री-पुरूषेा को तलवार के घाट उतार दिया,स्पेन मुस्लिम -विहीन हो गया और वह स्पेन बना रह गया,मोरक्को नहीं बना।

पोलैण्ड ,बल्गारिया ,सर्बिया यूनान आदि सभी ईसाई देशों में मुसलमानों की ऐसी ही दुर्दशा हुई और इन देशेा के नागरिकों ने मुसलमानी राज्य और धर्म के नीचे दबे हुए अपने देश को स्वतन्त्र कर मुस्लिम विहीन कर लिया।

आँठवा अध्याय

दूसरे भाग का उपसंहार

इस दूसरे भाग में जिन अनेक तथ्यों की चर्चा की गई हैं उसका आशय संक्षेप में इस प्रकार हैं-

अन्य महान् राष्ट्रों की भाँति भारत पर भी ऐतिहासिक काल में मुख्यतः यवन,शक ,हूण इत्यादि विधर्मी म्लेच्छों द्वारा जो बड़े -बड़े भयंकर सशस्त्र आक्रमण हुए और जिनसे भारत को अनेक शताब्दियों तक जूझना पड़ा ,अंततः हिन्दुस्थान ने उन सबका पराभव कर उनकी राजसत्ता का समूल उच्छेद किया और अपनी राजकीय स्वतंत्रता बार-बार प्रस्थापित की। पुनश्च ,संघर्षकाल में जो यवन,शक ,हूण आदि लाखों म्लेच्छगण अनेक प्रान्तों मे स्थायी रूप से बस गये थे, उन्हें अपने वैदिक धर्म, देवी-देवताओं संस्कृत भाषा और सभ्यता -संस्कृति की दीक्षा देकर समाज में खपा लिया था कि उनके मूल म्लेच्छ गोत्र ,नाम आदि पूर्णतः समाप्त हो गए और वे स्वेच्छा से हिन्दूजाति में पूर्णरूप से मिलकर ऐकरस और एकजीव हो गये।

परन्तु मुस्लिम आक्रमण का संकट जब हिन्दुस्थान पर आया तब हिन्दू राष्ट्र प्रतिकार करने के लिए उससे एक हजार वर्ष तक जझूता रहा। अंत में यद्यपि हिन्दुओं ने मुस्लिम राजसत्ता को यवन-शक-हूणादि की परकीय सत्ताओ के समान ही उखाड़ डाला और अपनी राजकीय स्वतंत्रता पुनः प्रस्थापित कर ली ,तथापि उन्होनें जिस प्रकार यवन शकादि को पचाकर पूर्णरूप से हिन्दू बना लिया,उस प्रकार वे मुसलमानों का हिन्दूकरण क्यों नहीं कर सके ?

इस ग्रंन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत उक्त प्रश्न का सूक्ष्म विश्लेषण इस दूसरे भाग में मुख्यतः ऐतिहासिक आधार पर किया गया हैं। उस समय की परिस्थिति का इस विश्लेषण से यही निष्कर्ष निकलता हैं कि मुस्लिम राज्य-सत्ता का उच्छेदन करते समय तथा इसके तुरन्त पश्चात् जो अनेक अनुकूल अवसर मिले उनका उपयोग कर हिन्दुओं ने मुस्लिम धर्मसत्ता पर अत्याचारी प्रत्याक्रमण नहीं किया और शक्तिप्रयोग करके मुसलमानों को हिन्दू नहीं बनाया।

पहले जिस प्रकार यवन,शक ,हूण आदि के मामलों में उनके द्वारा हिन्दू धर्म में आने की बात सोचते ही,उस समय के हिन्दू-जगत् ने सहभोजन,सहनिवास ,सहविवास आदि सामाजिक जीवन के समस्त उपांगो में पात्रापात्र विवेकपूर्ण उन्हें अपने समाज में मिला लिया। उसी प्रकार मुस्लिम राज्यसत्ता का पराभव करने के उपरान्त यदि उस समय के विजयी

हिन्दू -जगत् ने रोटीबन्दी ,बेटीबन्दी, शुद्धिबन्दी सिन्धुबन्दी इत्यादि सामाजिक रूढ़ियो को तोड़कर एक तरफ से सब मुसलमानों को शुद्ध कर पात्रापात्र विवेकपूर्वक अपनी परम्परा में आत्मसात् कर लिया होता तो यह हिन्दुस्थान उसी समय स्पेन आदि देशों के समान ही मुस्लिम-विहीन हो गया होता और यह सही अर्थ में'हिन्दुओं का स्थान बन जाता'।

इस ग्रन्थ में साधारण सन् 700 ई से 1800 तक के कालखण्ड में हिन्दुस्थान पर हुए मुसलमानों के आक्रमण और उनके कारण सतत् जारी रहे हिन्दू-मुस्लिम महायुद्ध कें इतिहास की समीक्षा के सभी तथ्यों का सम्बन्ध उस कालखण्ड की ही परिस्थिति से हैं इन्हें पढ़तें समय पाठ्को को हमेशा यह ध्यान रखना चाहिए कि उन ऐतिहासिक परिस्थियों में देश -काल- पात्र की संगति में जॊ कार्य आवश्यक इष्ट अथवा हितकारी सि होत□ है व□ अन्य परिस्थितयो तथा कालखण्डो में भी सम्भव है कि दशकाल पात्र क□ भद्व स□ व□ अनावश्यक अनिष्ट और अहितकारी सिद्द हो । फिर यह समस्या चाह□ राजनीति धर्मनीति अथवा जीवन क□ किसी अन्य सम्बन्ध रख ती हो ।

राजनीति और धर्मनीति क□ मान्य आचार्य समर्थ रामदास स्वामी न□ अपन□ निम्नांकित छन्द में यह रहस्य स्पष्ट रीति स□ व्यक्त किया है

समयासारखा समयो य□ ना । नम्म एकचि चालम्ना ।।
नम्म धरिता राजकारणा। व्यत्ययो पड□ ।।

अर्थात् समय सरीखा समय न होव□ एक नियम न चल□ ।
राजनीति में नियम रख□ तो व्यतिक्रम बहुत पड□ ।।